ब्रह्मावर्त प्रान्तान्तर्गत साढ़ ग्राम निवासी
श्री पं० जवाहरलाल अवस्थी के प्रपौत्र, श्री पं० रामचन्द्र अ०
के पौत्र, श्री पं० कामताप्रसाद जी अवस्थी के पुत्र
ग्रन्थ रचयिता

श्री पं० माधवराम अवस्थी "व्यास"
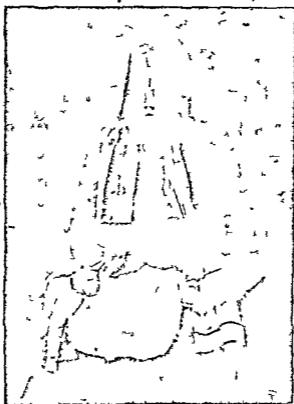
संस्कृत श्लोक भाषा काव्य सहित पुस्तकें वेदान्त तथा श्रीमद्भगवत
गीता नन्दोत्सव से कालीदमन पर्य्यन्त वेदान्त श्रीमद्भागवत
रास पंचाध्यायी गोपी उद्धव संवाद, रुक्मिणी मंगल,
धर्म कर्म शिक्षा सर्वस्व धर्म नीति शिक्षा सर्वस्व
भक्ति प्रेम शिक्षा सर्वस्व भजन रत्नमाला
आदि अनेक भक्ति ज्ञान उपदेश पूर्ण
पुस्तकों के निर्माता।

इक एक से बढ़िया वस्तु, ग्राम बस्ती औ नगर घनेरे हैं ॥
सामान राजसी ठाठ आपसे नहिं कह सकता जो मेरे ।
है हुक्म मेरा गालिब सबपर, देखो सब मन्त्री सँग चेरे ॥
दो०–तुम कैसे महराज हो, उत्तर देहु बताय ।
महराजा महिमें पड़े, सुनिके संशय जाय ॥
छ०–तुम महराजा कुछ पास नहीं, कैसे दिलमें विश्वास करूं ।
हे संत मुझे समझा दीजे, मैं वचन तुम्हारा दिल में धरूं ॥
शि०–नमेशत्रुःकाऽपि किमुभवतिसेनादिभिरलं नमेचेच्छारागे किमुभवतिशय्यादिवसनैः ॥ नमेभोगेरागःकिमुभवतिखाद्यैर्युवतिभिर्मतिर्नोयात्रायांकिमुगजसुयानैर्विविधिभिः ॥१॥
छ०–नहि शत्रु मेरे कोइ दुनियांमें सेना हथियार करूं क्या में।
इच्छा नराग में तिल भर है, शुभ वसन सुसेज धरूं क्या मैं॥
नहिं भोग की इच्छा सपने में, रानी सुख भोजन पान से क्या।
चलने की न इच्छा पग भर है, हाथी घोड़े रथयान से क्या ॥
तुम्हरे शत्रू दर २ में हैं, डरपोक ये सेना साथ लिये ।
रानी बन पलंग बिछौने पर, नहिं सोना नींद भर फ़िकर किये॥
भोगों में कुत्ता बना भूप, रानी कुतिया लिपटाई है ।
मारा फिरता तृष्णा से चूर, नर तन ले शरम न आई है ॥
दोहा–सुन भूपति अब और यह, कर मिज्ञान मन माहिं ।
राजा हो मंगता बना, सुख की छुई न छाँह ॥
श्लो०–राज्ञीमेसुमतिश्चसेवनपराशांतिःसुसिंहासनं मन्त्रीज्ञानमलं विरागमहितंसत्कल्पनाःसेवकाः ॥ जित्वासर्वरिपून्सुप्राप्तविजयो मोहमलोभादिकान्किंसेनागृहदुर्गशस्त्रनिवहैराजाम्यहंराजराट् ॥१

छ०-महरानी मेरी सुबुद्धी है, सेवा करि देत उसांसी है।
सिंहासन शांति पै विराजता, सत विचार दासहु दासी हैं॥
मंत्री हैं ज्ञान विराग सहित, लोभादिक रिपु से जय पाई।
गृह किला देह सेना से क्या, यों महराजा पदवी पाई॥
तू रानी जी का नौकर है, हांजी हांजी नित करता है।
सिंहासन पर भी सियार बन, भय दिलसे तेरे न टलता है॥
मंत्री तेरे हैं जाल कपट, दासों का दास भया निशि दिन।
है फौज किले में भी बैठा, दहसत नहिं जाती है भर छिन॥

दो०-बयान मेरा बहुत है, कहूँ तुझे संक्षेप।
समझ जायतो दिल तेरा, होजावे निर्लेप॥

श्लो०-मयात्यक्तंसर्वधनरथगजंबाजिनिवहंकृताभूमिःशय्याद्विकरमुपधानंविरचितम् ॥ नकस्याधीनोऽहंशिरसिममचाज्ञासुरनरैर्धृतात्यक्तालोकत्रयविपुललक्ष्मीःस्वमनसा ॥

छ०-मैं बड़ा नृपति महराजा हूं, धन गज रथ घोड़े त्यागे हैं।
यह सेज भूमि तकिया है हाथ, अब भाग हमारे जागे हैं॥
नहिं पराधीन सुर मनुज सबी, मेरी आज्ञा शिर धारे हैं।
त्रयलोक की लक्ष्मी त्यागि, विरागी हो रहते मन मारे हैं॥

चौ०-कहिय तात सो परम विरागी। तृण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी॥ रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन इव जन बड़ भागी॥

दोह-तीन टूक कौपीन को, है भाजी बिन लोन।
नारायण जन सामुहे, इन्द्र बापुरो कौन॥

छ०-तुम मान गुमान लिये भारी, यह सेना संग बटोरे हो।

श्रीमान सेठ चेनराजजी के पौत्र श्रीमान् सेठ हरद्वारीमल जी के पुत्र

श्रीमान् सेठ बद्रीदासजी अग्रवाल (बगड़िया)
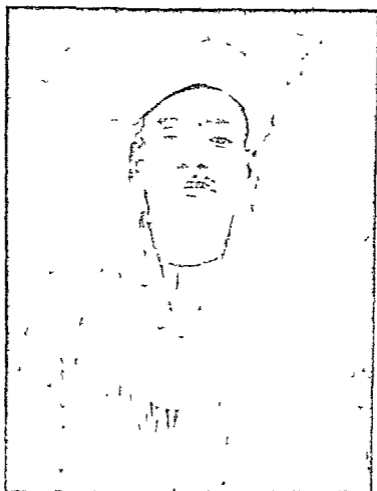
आपके स्व० सेठ श्री विशेश्वरदास जी ताऊ हैं श्री० सेठ जमनादासजी
श्री सेठ जयनारायण जी चाचा हैं श्री सेठ जमुनादास जी
के चि० श्री० सेठ बजरंगलाल व सेठ जयनारायण जी के
चि० सेठ बच्चूलाल जी पुत्र हैं।

आपने श्री आनन्देश्वर जी पर अति सुन्दर घाट धर्मशाला बगीचा बनाया है वहां तीन घंटे भजन करने वालों को अन्न भी मिलता है आपकी सहायता से श्री आनन्देश्वर जी की पूजा सेवा का ठीक २ निर्वाह चलता है आपने वितरणार्थ भागवत गीता रुक्मिणी मंगल द्विजाति पुनरुद्धार शास्त्रार्थ की १०००० पुस्तकें छपाकर बटवाईं और वितरणार्थ इस किताब में ५०० प्रतियों में पूर्ण सहायता दी है।

आगम न है तिल भर तुमको, सब रंग है तौभी कोरे हो ॥
राजसी ठाट सामान तेरा, सब यहीं पड़ा रह जावैगा।
कर होश मूढ़ बेहोश हुआ, अपने को खाक मिलावैगा ॥
जिनको समझे अपना है तू, ये तेरा साथ न देवेंगे।
मिट्टी में मिला कर तुझे भूप, सब अपनी रस्ता लेवेंगे ॥
कर पाप लाद करनी का बोझ, भोगते न छुट्टी पावैगा।
सह भूख प्यास जाड़ा गर्मी, मर मर चौरासी आवैगा ॥
दो०—नृपति काल खाजा भया, क्यों बनता मतवार।
चेत चेत महराज हो, भजले नंद कुमार ॥
बड़े बड़े चैतन्य नृप, चेते अन्त प्रमान।
रघु दिलीप जनकादिहू, सच्चा कौन समान ॥
भजन—बनाय ले अपनी चलती बिरिया ॥ टे० ॥
पूत भूत करि पिंड न छोड़ें, तरन न देहें तिरिया।
मीत परोसी भाई बंधु सब, करिहैं नाहिं जिकिरिया ॥
भाग भोग हैं अलग सबन के, काहे करत फिकिरिया।
माधवराम मिलहिं कहु कैसे, कौन भजन से किरिया ॥
छ०—इस तरह से हम महराजा हैं, देखो विचार दिल अपने मे।
हमको दुख नहिं संसारी है, नहिं तुम्हे सत्य सुख सपने में ॥
जाओ ये मार्ग तुम्हारा है, हम अपने रस्ते जाते हैं।
पूंछना और हो सो पूंछो, उत्तर दे तुम्हें सुनाते हैं ॥
राजा ने पूंछा महाराज, संदेह हमारा दूर भया।
इक थोड़ी सी है बात न समझे, तिसमें है संदेह नया ॥
सब त्याग दिया तो महाराज, ये कान में कौड़ी क्यों धारी।

इसमें ही शोक क्या पूरी हो, ज्यों फगते जग में नरनारी ॥
दो०—तब बाबा बोले मगन, यह है गुरू प्रसाद ।
इससे शिक्षा सुमिरि हिय, छूटै सकल विषाद ॥
छ०—इस कान की फूटी कौड़ी से श्री गुरुजी ने समझाया है ।
फूटी कौड़ी समान जग सुख, तन धन सुत जाया माया है ॥
परलोक का सुख साजी कौड़ी, के समान लखना ऐ प्यारे ।
प्रारब्ध भोग भव रोग समझ, रहना हिय राम कृष्न धारे ॥
सतविचार गुरु उपदेश चिन्ह, यह कान में अपने धारे हूं ।
कुछ भी हो मनुआ मस्त रहे, रट राम सदा मन मारे हूं ॥
लेसार विचार संग करके, कहना झूठा तो उत्तर दे ।
गर सच्चा ही तू राजा है, सब लेता इसको भी धर ले ॥
दोहा—सुनराजा चरणन परे, छोड़ा सब अभिमान ।
स्तुति फिर करने लगे, गद गद वानी ठान ॥
भजन—आपही पूर महराज हो, गुरुसंत तुम्हारी जै हो ।
सब राजन में शरताजहो, गुरुसंत, तुम्हारी ॥ टे० ॥
राजपने का गुमान भारी, धारे था दिलमें हंकारी ।
मैं पक्षी मिले तुम बाज हो, गुरुसंत तुम्हारी जै हो ॥
मन मतंग मेरा मतवाला, बहुजीवन पर बनि भूपाला ।
भागा सुनि सिंह गराज हो, गुरु संत तुम्हारी जै हो ॥
तृष्णा तरुण उदधि अति भारी, विषय घोर बहजोर बयारी ।
मिलगे प्रभु काग जहाज हो, गुरु संत तुम्हारी जै हो ॥
दाया करि हरि तुम्हे मिलाया, वहे जात कहँ थाह बताया ।
करो सिद्धि हमारे काज हो, गुरु संत तुम्हारी जै हो ॥

सो उपदेश मोहिं दे दीजै, जगमें जन्म फेरि नहिं लीजै।
सेवक पर मत नाराज हो, गुरु संत तुम्हारी जै हो ॥
माधवराम विनय अस ठानी, आप संत हैं श्रीगुरु ज्ञानी।
रह शरण गहे की लाज हो, महराज तुम्हारी जै हो ॥

दोहा—बार बार विनती यही, करि दाया उपदेश।
ऐसा गुरु कर दीजिये, रहै मोह नहिं लेश ॥

छ०—तब संत कहें जिसमें २, रहै मोह तू मुझे सुनाता जा।
मैं ज्ञान अमृत पारस परसूं, तू मौज से भोग लगाता जा ॥

श्लो०—धनेपुत्रेनार्य्यां निजतनुकुटुंबेममतिगृहेदुर्गेहर्म्येगजतुरगयांनेशुभरतिः ॥ सुभोगेभोगानांप्रतिदिवसतृष्णातरुणतामहामोहेमग्नोभवनिधिसुतारंप्रकुरुतात् ॥ १ ॥

भा०—धन सुत नारी कुल देह संग, गृह किला महल गज रथ तुरंग। भोगहु महँ तृष्णा अति उदंड, गुरु मोह हरो मम अति प्रचंड ॥

छ०—चाहे जितना धन मिलै मुझे, अब मिलै और व्याकुल रहता
हैं पुत्र गुनी तहुँ सुर मनाय, हो एक और दिलसे चहता ॥
नारी है सुघर संतोष नहीं, गैरों की देख पिघलता हूं।
कोशिश में लगा रहता हरदम, नहिं मिलती दिलसे जलता हूं ॥
तन शौक में मैं दीवाना हूं, खाना पीना कपड़े गहना।
नित नये तहूं चित खुशी नहीं, हो और नया फिर २ कहना ॥

छ०-घर किला हिलाता दिल मेरा, महलों में मन नहि खुश होवै।
गैरों की झोपड़ी देख सुघर जलकर दिलही दिल में रोवै ॥

दो०—भाई बाप का ख्याल कुछ, गलेहार परिवार।

छन भर चैन मिलै नहीं, पलही पल में हार ॥
छ०-दिन बदिन देह कमजोर होय, तृष्णा तरुणाई आई है।
मैं मोह सिंधु में डूब रहा, सपने में थाह न पाई है ॥
अज्ञान रोग से ग्रसित हुआ, दिन २ दुर्बलता छाई है।
दाया करि दीनानाथ गुरू, अब दीजै कोई दवाई है।
सुन सारा हाल भूपति का संत, मनही मन में हर्षाये हैं।
है सचो यह सब बात कहैं, उद्धार हेत मन लाये हैं ॥
दो०-एक एक सब वस्तु का, पृथक २ निरधार ।
कहते गुरु समझाइ हैं, समझे बेड़ापार ॥
श्लो०-जनामातातातःसुतसुहृदजायापरिपवोभवेयुश्चौरात्रंप्रभृति नृपसंगाअसुगृहाः ॥ क्षुधानिद्रात्यागोबहुकलहतृष्णातरुणता धनेचैतेदोपानहिंमनसिधेर्यकविवरैः ॥ ४ ॥
भा०-वैरी माता तातहू पुत्र, जन मित्र सबै दुश्मन कलत्र।
नृप सेवक चोर प्राण ग्राहक, धन औगुण मय तृष्णा नाहक ॥
क०-मांगे माँ रुपैया औ बपैयाहू रुपैया मांगे, पूत दिन रात ही रुपैया रट लाई है। मित्रहू रुपैया सगो भैया सो रुपैया मांगे, रटति रुपैया अर्धाङ्गिनी लुगाई है ॥ नृपति रुपैया दास दासिहू रुपैया चोर, हरत रुपैया प्राण संकट सवाई है। माधोराम सुरति भुलावे यों रुपैया रोज, हरै नींद भूख धूक ऐसो दुखदाई है ॥
दोहा-धिक् धन धिक् धनवान कहँ, विछुरैं जो भगवान।
सर्वस वारि कृश्न मिलु, तन धन अति प्रिय प्रान ॥
श्लो०-अर्थानामर्जनेदुःखमर्जितानांचरक्षणे ॥ नाशेदुःखंव्यये

दुःखंधिगर्थाःकष्टसंश्रयाः ॥ २ ॥ निष्कोनिष्कशतंशतोदशशतं लक्षंसहस्राधिपोलक्षेशोक्षितिपालतांक्षितिपतिश्चक्रेशतांवांछति ॥ चक्रेशःपुनरिंद्रतांसुरपतिर्ब्राह्मं पदंवांछति ब्रह्माविष्णुपदंहरिःशिव पदंतृष्णावधेःकावधिः ॥ ३ ॥

दो०—धन बहु दुख दाई नृपति, धन में सब विधि हार।
तृष्णा धन की त्याग कर, हो जा भव से पार ॥

छ०—धन संचय करने में है कष्ट, रक्षा में दुःख उठाना है।
खर्चने में होना दुःख बड़ा, हर जाने में मर जाना है ॥
हो एक स्वर्ण मुद्रा जिसके, वह सौ की आश लगाता है।
सौ वाला चहे हजार, सहसपति लाख होंय खड़ाता है ॥
लखपती चहे राजा हम हों, पद चक्रवर्ति राजा चहते।
इन्द्रासन माँगे चक्रवर्ति, मिलै ब्रह्मा पद सुरपति कहते ॥
विधि कहें बिश्नु हम हो जावें, हर शिवपद आश लगाते हैं।
तृष्णा तरंग में पड़े सबी, अध ऊपर आते जाते हैं ॥

दो०—धन तवर्ग यह सांप है, मन मूषक ग्रसि लेय।
पवर्ग मूषक जानिये, धन में मन नहि देय ॥

श्लो०—माधावमावावविनैवदैवंनोधावनात्साधनमस्तिलक्ष्म्याः ॥ चेद्धावनंसाधनमस्तिलक्ष्म्याःश्वधावमानोनकुतोधनाढ्यः ॥

छ०—नृप लखो चहा धन मिलै नहीं, चहे दौड़२ कोइ मरजावै
ज्यों २ ये दौड़े पर धन को, घर की भी दौलत हरजावै ॥
दौड़ना न धन का साधन है, गर यही श्वान निशि दिन दौरे।
नहिं होय धनी भरता न पेट, संतोष में सुख पाकर कौरे ॥
हो बहुत संग नहिं ले जाना, खाली ही हाथ खाना है।

कुछ पास न हो तौ भी वैसे, चाहे धनमाल ख्जाना हे ॥
दोहा—समझदार इक बात में, लख जाते हैं सार ।
शिर पच्चन कर शास्त्र पढ़ि, समझत नहीं गवांर ॥
श्लो०—पुत्रःस्यादितिदुःखितःसतिसुतेतस्यामयेदुःखितस्तद्दुःखा दिकमार्जने तदनयेतन्मूर्खतादुःखितः ॥ जातश्चेत्सगुणोऽथ तन्मृतिभयंतस्मिन्मृतेदुःखितःपुत्रव्याजमुपागतोरिपुरयं माकस्य चिज्जायताम् ॥५॥
कुन्ड०—पूत होन हित मन दुखी, भयोरोग ग्रसिलीन ।
रोग हरैं महं अति दुखी, मूरखता लखि दीन ॥
मूरखता लखि दीन, गुणी भये निशि दिन सोचै ।
मरि न जाय कहूं वियोग महँ निज प्रानहु मोचै ॥
माधवराम चिरजीव लख, आत्मा होय न भूत ।
पुत्र व्याज से शत्रु अस, दैव न देवै पूत ॥
दो०—पुत्र होय तो अति खुशी, नहीं भये हरपाय ।
परमेश्वर की सृष्टि यह, उपजै और नशाय ॥
शि०—मुखंश्लेष्मागारंतदपिचशशांकेनतुलितं कुचौमांसग्रंथी कनककलशौद्धावपिवदन् ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरोद्धोसुजघने मुहुर्निद्यं रूपंकविवरविशेषैर्गुणयुतम् ॥
छ०—मुखमें हे थूंक खखार नाक, अरु कान मवी मल देते हैं।
उपमा कवि लोग चन्द कहिकै, मूर्खों का धन हर लेते हैं ॥
स्तन हे मांस की गांठ पकै, तो पीब का वार पार नहीं ।
पर मूरख कनक कलश माने, पियें दूध पुत्र गुनिहार नहीं ।
मल मूत्र बनाने की मशीन, तिसको हशीन कह फूले हैं ॥

वानगी नर्क डिबिया है नारि, यमलोक खत्तियाँ भूले हैं ।
सृष्टी बढ़ने को नारि पुरुष, परमेश्वर ने रच दीन्हे हैं ।
लड़का लड़की कर छुट्टी लो, तहँ मूढ स्वांग रच लीने हैं ॥
दो०– जो नारी पर पुरुष रत, पुरुष फँसे पर नार ।
जप पूजा कुछहू करै, भूलेहु नहिं उद्धार ॥
श्लो०–यांचिंतयामिसततंमयिसाविरक्ता साप्यन्यमिच्छतिजनं मजनोन्यशक्तः ॥ अस्मत्कृतेचपरितुष्यतिकाचिदन्याधिग्तांच तंच मदनंचइमांचमांच ॥
कुड०–रानी रम पर पुरुष सों, पुरुष वेश्या लीन ।
वेश्या चाहे भूप कहं, लाय अमर फल दीन ॥
लाय अमरफल दीन, प्रथम द्विज से नृप पायो ।
नृप रानी को दियो, रानि पर पुरुष गहायो ॥
माधवराम अमर फल, नृप लहि बहुत कहानी ।
धिक मैं धिक सो नारि, पुरुष धिक सो धिक रानी ॥
कुड०–रानी बुधि नर भर्तृहर, गुरु द्विज, फल है ज्ञान ।
पाय भूप रानिहि दियो, करिहैं मम कल्यान ॥
करि हैं मम कल्यान, मोह पुरुषहि बुधि दीनो ।
तृष्णा वेश्या मोह पुरुष से फल लै लीनो ॥
माधवराम भुपाल लखि, तृष्ना दीनो आनी ।
खाय ज्ञान फल अमर, जीव तजि जग बुधिरानी ॥
श्लो०–आहारःफलमूलमात्मरचितं शय्यामहीवल्कलंसंवीताय परिच्छदःकुशसमित्पुष्पाणिपुत्राःमृगाः ॥ वस्त्रान्नाश्रयदानभोग भिवानिर्यंत्रणाशाखिनो मित्राणीत्वयधिकंगृहेपुगृहणांकिनाम

दुःखादते ॥

कुड०–मूलहु फल आहार हैं, मही सेज पट छाल ।
सामग्री कुश सुमन सब, पुत्र अहैं मृगवाल ॥
पुत्र अहैं मृगवाल, वस्त्र फल वृक्षहु देवैं ।
करि गृहस्थ सो प्रीति, विरागी दुख कस लेवैं ॥
माधवराम सचेत हो, साधुन की बड़ि भूल ।
पेट हेत सेवत गृही, तजि बनके फल मूल ॥

स०–दूध अहारी वने बड़िहानि, चखैं फलहारिहु सेव अनारन ।
दाम वहाय विशेष खुराक में, खोवत योग विराग पनारन ॥
मारे फिरैं पृथिवी भर में. वहु व्याकुल तीरथ धाम पहारन ।
माधवराम भजैं विरले, संतसंग करैं, रहैं वेप सधारन ॥

श्लो०–वीभत्साविपयाजुगुप्सिततमः कायोवयोगत्वरंप्रायोवंधुभिरध्वनीयपथिकैर्योगोवियोगावहः ॥ हातव्योऽयमसारएवविरसः संसारइत्यादिकंसर्वस्यैवहिवाचिचेतसिपुनःकस्याऽपिपुण्यात्मनः॥

कुड०–अहैं विपय भयकार अति, काया निंदित रूप ।
बयस व्यतीत होति नित, भाई पथिक सरूप ॥
भाई पथिक सरूप, योग है बियोग दायक ।
है असार संसार, चतुर के, त्यागैं लायक ॥
माधवराम वचन मन, पुण्यात्मा कोइ सुख लहैं ।
भजे सदा घनश्याम, तेई सुखिया अहैं ॥

सो०–है सब जगत उदास, जो भूलातन शोक महँ ।
सुखो राम के दास, तन मन हरिहि समर्पि सब ॥

श्लो०–भोगेरोगभयंकुलेच्युतिभयंवित्तेनृपालाद्भयंमौनेदन्यभयं

बलेरिपुभयंरूपेजरायाभयम् ॥ शास्त्रेवादभयंगुणेखलभयंकाये कृ न्ताद्भयंसर्वंवस्तुभयान्वितंभुविनृणांवैराग्यमेवाऽभयम् ॥

कु०—भोगमांहिं है रोगभय, धन महं नृप भयमान।
मौन माहिं है दीन भय, बलमहं रिपु भय जान॥
बलमहं रिपु भयजान, शास्त्र पढ़ि विवाद भय हैं।
गुणमें खल भय गुनो, काय कालहु भय लय हैं।
माधवराम विचारे लो, अभय विरागहु योग॥
सबै वस्तु भय सहित हैं, जितने जग के भोग॥

दोहा—भ्रमि २ सब भव भय परत, निर्भय हरि पद त्याग।
अधिकारी सो अभय पद, जाके हिय वैराग॥

श्लो०—इमंत्वंतिमंचोपदेशंमदीयंहिभूपालचित्तेस्वकीयेनिधेहि॥
विरागेणहीनोनरःकाऽपिलोकेकदाचिद्भवाब्धेर्नपारंप्रयाति॥ १॥

शि०—भवेत्किंज्ञानेनव्रतविविधिपूजा जपरतेर्नमुक्तिर्ध्यानेनमति गतविरागंनहिमनः॥ वृथासर्वंराजन्ममकथनमंतःप्रकुरुतात्प्रबोधं वैसद्योहदिदृढ़विरागोजनयिता॥ २॥

छ०—अन्तिम उपदेश मेरा राजन, सुनकर अपने चित में धरलो।
बिन विराग, नर भव पार नहीं, तुम भी विचार मन में करलो॥
बिन विराग मन नहिं जग छोड़ै, बिन तजे न मुक्ती पावैगा।
मनहीं का त्याग है त्याग सत्य, तन त्यागे सत सुख छावैगा॥
व्रत ज्ञान विविधि पूजा जप सब, नहिं ध्यानहु मुक्ति प्रदायक है
है धनुप समान विराग नृपति, सब साधन इसमें शायक हैं॥
जब तक मनमें वैराग नहीं, मुक्ती की आशा न करना तुम।
विज्ञान ज्ञान वैराग से हो, यह सच्चा कहना धरना तुम॥

दोहा—सुन राजा हर्षित भये, मन उपजा वैराग ।
चलने को तैयार सँग, राज पाट सब त्याग ॥

छ०—तब संत ने समझाया नृप को, पहले घरमें पक्का करलो ।
मन विराग कर हर पदार्थ से, पीछे अपने तन में धरलो ॥
अभी तन वैराग न अच्छा है, कुछ दिन में ढीला होजावै ।
है चार भेद इस विराग के, दृढ़ विराग करके सुख पावै ॥
बाबाजी कहके चले उधर, इत राजा घरमें आये हैं ।
सबसे मन अपना खींच लिया, प्रारब्ध भोग पर लाये हैं ॥
मन जग छोड़ै थिरता पावै, शाँती आनन्दहु मुक्ति मिलै ।
भगवत का भजन होता है प्रेम, ज्यों शुद्ध सोन छनमें पिघलै ॥

दो०—कुछ दिन में मन सुदृढ़ करि, राजपुत्र कहँ दीन ।
वनहिंजाय हरि सुमिरि तन, त्यागिमुक्ति लयलीन ॥
सुजन सुनो नर नारि सब, मन बिराग लो धार ।
माधवराम कहत सही, भव से बेड़ा पार ॥

भजन—मुक्ती की चाह मनमें, जग से बिराग लावे ।
अनमोल तन रतन ये, झगड़ों में मत गँवावे ॥
संचित प्रारब्ध करतब, हैं तीन कर्म न्यारे ।
जल जाँय एक छन में, ज्ञानाग्नि जो जगावे ॥
सुख दुख से है तु व्याकुल, अपमान मान पाकर ।
गर हो विराग मन में, सारा भरम बहावे ॥
बहु बार जन्म लेकर, दुनियाँ के भोग भोगे ।
विषयों की धूल फांके, दिल की तपन न जावे ॥

आनंद सत्यसुख का, जो है तेरे इरादा ।
माधोराम मोह मत कर, गुनगान कृश्न गावे ॥
इति श्रीवेदांतविज्ञानशिक्षासर्वस्वे वैरागप्रकरण नाम प्रथमोऽध्यायः

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

विचार दीपक नाम द्वितीयोऽध्यायः।

श्लो०—विचारहीनस्यवनेऽपिदुःखंयतोजितंनैवमनोविकारम् ॥
नवंधनंकापिगृहेप्रयातिविचारवान्यःसुसंगयुक्तः ॥
भा०—नर रहित विचार दुखी वनमें, हैं सब विकार तिहके मनमें।
घरमें बसि बंधन नाहिं लहै, जो नर विचार संयुक्त अहै ॥
श्लो०—विचारहीनस्यवनेऽपिबंधनंनवैसुखंत्यक्तगृहस्यकाऽपि॥
गृहेस्तस्याऽपिनरस्यमुक्तिःकृतेविचारेप्रभवेन्नितान्तम् ॥ २ ॥
भा०—नर रहित विचारलहै बंधन, घर त्यागि न पावै सत सुखमन।
घरही में बसि हो जाय मुक्त, करिके विचार वैराग युक्त ॥
श्लो०—धनीधनंलक्षमितंप्रदत्वाजग्राहचैकंसुविचारकंवे ॥
नप्रापमृत्युंखलुसेवकोऽपि छलंस्वकीयंप्रकटीचकार ॥३॥
दोहा—धनी पुरुष दे लक्ष धन, लीन्हों एक विचार।
बच्यो मृत्यु से सेवकहु, प्रकट कीन अभिचार ॥
छ०—इक नगर में था धनवान बड़ा, वह धर्म दयामय रहता था।
सबका रक्षक सुखदाई था, नहिं कभी बुराई चहता था ॥
ऐसही चाहिये सज्जन को, औरों को मदद तन धन से करे।

परमेश्वर की भी याद करे, दीनों का दुख सब भांति हरे ॥
तहं एक आदमी दश बातें, दश लाख की वेचन को लाया ।
सुनकर सब चुप होजाते हैं, कोइ कहते यह पागल आया ॥
फिरते २ इस अमीर के, इक दिन यह मन में आयगई ।
लेऊं इक बात परीक्षा हित, दृढ़ता ये दिल में भाय गई ॥
दोहा—बुलवायो उस पुरुप को, मोल लई इक बात ।
अचरज मानैं और सब, अमीर धोखा खात ॥
छ०—धनवान ने कुछ परवाह न कर, रुपया इक लाख दिया उसको
जो करै सोई कर विचार कर, यह बात कही उससे जिसको ॥
इस अमीर ने यहबात, आपने कमरे ही में लिखवाई ।
अक्षर हैं बड़े २ भारी, सबही के पढ़ने में आई ॥
कुछ दिन के बाद थे भाई बंद, इसके हरदम दुश्मन मनसे ॥
सब मिलाय इसके नौकर को, लालच पूरा देकर धनसे ।
दश हजार रुपया लो पहले, औ मालिकसा तुम्हें मानेंगे ।
जो करदो हमारा काम तुम्हें, हम अपना ईश्वर, जानेंगे ॥
दोहा—दूध आपके हाथ से, पीता है यह नित्त ।
जहर दूध में डाल दो, यही हमार निमित्त ॥
छ०—लालच होता है जग में ऐस, सब कीही मति हर जातीहै ।
कोई करोड़ में विरला है, जिसकी बुधि वश नहिं आतीहै ॥
लालची नारि नर पाप करैं, औरों की जान धन लेते हैं ।
सुखमान रहे छन भर तन में, सौ गुना दुःख भर सेतेहैं ॥
हां करली नौकर पापी ने, झट दूध में जहर मिलाया है ।
मालिक कमरे में अराम कर, यह पीने के हित लाया है ॥

लीजिये दूध लाकर बोला, वह उठ कर हाथ बढ़ाता है।
यह हाथ बढाता देने को, वह लिखा नजर में आता है॥
दोहा—जो कुछ करै विचार कर, लखते रुक गया हाथ॥
लगा कांपने तुरत तन, मालिक पूंछा गाथ॥
छ०—मालिक ने हाथ भी खीच लिया, उसके भी मनमें शक आई।
दिल साफ सफाई पाता है, दुचिता पावै है दुचिताई॥
जो होय बुरा दिल एक तरफ, दो तरफा भट हो जावैगा।
उपरी चुपरी बातें मिलकर, ऊपर ही स्वांग बनावैगा॥
इस कपट जाल से अलग २, रहना दोनों को सुखदई।
हां हां आनन्द मिलै दिलमें, लोकहु परलोक सुधर जाई॥
मालिक ने पूछा क्यों क्या है, वह मौन न उत्तर देता है।
नैनों से आंसू धार बहै, संदेह बहुत नृप लेता है॥
दोहा—डरो नहीं सच हाल कह, काहे रोवत दीन।
थर थरात घबरात अति, मनसे अधिक मलीन॥
छ०—घबराओ मत सच सच कहदो, मैं जरा न गुस्सा होऊंगा॥
सब हाल साफ सुन कर तुमसे, खुश होकर विपदा खोऊँगा॥
वह कहै मेरा अपराध बड़ा, मैं पापी ने यह कार किया।
यह जहर मिला है दूध, मारने के हित मैंने कपट लिया॥
फिर साफ २ इक लब्ज लब्ज, सारी उसने बतलाई है।
सुनकर मालिक खुश हुआ बहुत, अरु कीन्ही बहुत बड़ाई है॥
पूंछा तुम लाये मारन को, यह ख्याल कहां से पलट गया।
इसको भी साफ कहदो प्यारे, तुमपर मेरा विश्वास भया॥
दोहा— कहै ख्याल मजबूत था, लाया तुम्हरे पास।

लिखा देखते ही मेरा, होगया चित्त उदास ॥
छ०—जो करे सो करे विचार सहित, ज्यों अक्षर मैने बांचे हैं।
त्यों धर्म सत्य अरु दया अनेकों, विचार दिल में नाचे है ॥
हा निमक हराम कौन मुझसा, इस दुनिया के परदे में है।
खुश हुआ बुराई करने में, नहिं जरा दर्द हिरदे में है ॥
विश्वासघात मुझसे बढ़कर, क्या और कोई करने वाला ।
होवैगा दे रहा जहर उसे, जिसने तन मन से प्रति पाला ॥
धिक धिक मूरख मुझ पापी को, जो जरा विचार न लाता है।
लालच में आके मालिक को, चट तूही जहर पिलाता है ॥
दोहा—बहुतं ख्याल दिल में उठे, लगा कांपने हाथ।
थर थराय तन कांपता, यह सच्चा है गाथ ॥
छ०—मै अपराधी मारोमुझको, उद्धार तभी मै होऊंगा।
जो आप छोड़ देंगे मुझको, मैं जान आप से खोऊंगा ॥
क्या सूरत दिखलाऊं जगमें, पापी होकर क्या जीऊंगा।
जो नहीं मारते आप मुझे, चट यही दूध मैं पीऊंगा ॥
सुनते मालिक ने छीन लिया, चुप कारा बहुत दुलार किया ।
तुझे धन्यवाद सच्चा दिल है, कहर के बहुत हीप्यार किया ॥
जो कहीं न सच्चा होता दिल, क्या लिखा असर कर सकता है।
सब सुना सुनाया दिल कच्चा, भड़काय के लेता रस्ता है ॥
दोहा—साफ शीशे हो मे सदा, दिखनी मुहं की छांह।
ज्यों मलीन मन दर्पनी, कुछहू दीखै नाहं ॥
छ०—तुम पर मैं बहुतही खुश हूं अब, सच्चे से बुराई ना होवै।
भीतर से बुरा बनकर मीठा, मीठो कहे अन्त प्रान लेवै ॥

छ०—जो असल पना सच्चे दिलमें, झट अपना असर ले आताहै।
जब मैलापन दिल में होना, कहना मिट्टी मिल जाता है॥
स्वाती जल तो सीपी ही में, मोती बन कीमत पाता है।
पड़ सांप के मुंह में ज़हर बनें, यों मिट्टी में वह जाता है॥
बस जाव जिकर मत करना तुम, विश्वास पात्र तुमहो मेरे।
होगी न बुराई तुम से कभी, चह कितना कोई तुम्हें प्रेरे॥
दोहा—दूध दिया फिकवाय सव, उसे दिया समझाय।
बार२ उस बात को, सुमिरि२ हरपाय॥
छ०—धन रुपया लाख वसूल भये, जो बात पै मैने मोलदिया।
जो कहीं न होती लिखी बात, मरता ज्यों ही ले दूध पिया॥
थी जिससे लीन्ही बात बुला के, उसकी खातिर बहुत करी।

हमको क्या करना वाजिब है, मर कर जिसमें दुख नाहि आवे।
जिंदगी चन्द रोजा पीछे, यह जीव हमारा सुख पावै॥
सुख पाने की यह सत्य राह, तुम भी विचार मनमें करलो।

गर ठीक है कहना मानो गुरु, अपने दिलमें झटपट धरलो ॥
जो भाग लिखा सुख दुख धन सुत, वह आगे आगे आयेगा ।
मरना है दुनियाँ में जरूर, नहिं मौत से कोइ बचायेगा ॥

दोहा—जो करनी जैसी करै, करिहै तैसी भोग ।
दुख दरिद्र प्रिय वियोग ह्वै, विकल रहै तन रोग ॥

छ०—तब क्यों खोटा हम कर्म करैं, जो हमें भोगना फिरके परै ।
सह कष्ट पार करदे जिंदगी, नहिं लालच में पड़ दुःख भरै ॥
सब शास्त्र का संमत तुलसिदास, जी रामायण महँ गाते हैं ।
नहिं सुनिकै बुरा मानै कोई, शिक्षा के हेतु सुनाते हैं ॥
पर नारि करै पर नर से प्रीति, करि नर्क भोग बहु दुख पावै ।
फिर नारि भये पर झट विधवा, हो विपति सदा तन पर छावै ॥
जो पुरुष होय पर नारी रत, पड़ि नर्क होय मलका कीड़ा ।
शूकर कूकर खर पतित योनि, करि भोग होय नर तो पीड़ा ॥
धन हरै दरिद्री नर्क भोगि, फल बुरे का बुरा बताया है ।
सुनके समझो नर नारि, कर्म का फल चट आगे आया है ॥

दोहा—विचार कीन्हे सुख मिलै, जाय बुराई छूट ।
अन्धाधुन्ध किये अवै, पीछे लूटालूट ॥

स०—खाय विचारि नहाय विचारि, औ जाय विचारि विचारि अवैया। बोलै विचारि औ डोलै विचारिकै, तौलै विचारि विचारि गवैया ॥ देवै विचारि सो लेवै विचारि, औ सेवै विचारि विचारि सोवैया। माधवराम विचारि कहै, सुख पैहौ विचारि सो लोग लोगैया ॥

स०—सत्य विचार से ज्ञान विराग, बढ़ै हिय शांति अपार,

देवैया। झूठ विचार सो पापमयी,दुख दारिद औ यमलोक जवैया॥ कर्म की नाव परी भवसागर, जीव सवार विचार खेवैया। माधवराम विचार मिलाय, विचार मिलावत कृश्न कन्हैया॥

भजन—विचार करो प्यारे, दिलसे करो सच विचार।
आये यहाँ सँग सूत न लाये, चलना है हाथ पसार।
करनी भरनी पड़े जनम ले, करलो विगार या सुधार॥१
चटक मटक ये चार दिना को, पीछे उड़े तन छार।
संभल चलो हो सुयश तुम्हारा, विन श्रमहो भवपार॥२
पौ पर अटक रही अब बाजी, फेकौं दाँव सम्हार।
चूक परी जो भजन दांव में, जनम २ भव हार॥३
स्वांस २ पर नाम रटन लो, कहते हैं संत पुकार॥
माधवराम करो नेकी नित, मिलि जाँय नन्दकुमार॥४॥

दोहा—लख चौरासी भरम के, पौ पर अटकी आय।
अबकी पौ जो ना परै, फिर चौरासी जाय॥

इति श्रीवदाँत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे विचार दीपक नाम द्वितीयोऽध्यायः।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

योग तत्व शिक्षा नाम तृतीयोऽध्यायः।

श्लो०—एकाकिनासमुपगम्यविविक्तदेशं प्राणादिरूपममृतंपरमार्थ तत्वम्॥ लब्धाशिनाधृतिमता परिभावितव्यंसंसाररोगहरमौषधम

द्वितीयम् ॥ १ ॥ पद्मासनगतःस्वस्थोगुदमाकुंच्यसाधकः ॥ वायुमूर्ध्वगतंकुर्वन्कुम्भकाविष्टमानसः ॥ २ ॥ वाय्वाघातवशादग्निःस्वाधिष्ठानगतोज्वलन् ॥ ज्वलनाघातपवनाघाताद्धन्निद्रितोऽहिराट् ॥ ३ ॥ ब्रह्मग्रन्थिंततोभित्वाविष्णुग्रंथिंभिनत्यतः ॥ इत्यादि योगकुण्डल्युपनिषदि ॥

भा०—योगी अकेला रहे सात्विक लघु भोजन करे धारणा साधे एकांत स्थान में प्राणादि रूप परमार्थ तत्व अमृत की भावना करे यह संसार रोग हरने वाली अपूर्व औषधि है पद्मासन बैठकर सावधान हो फिर साधक गुदाको ऐंडी से दबा कर कुंभक करता हुवा वायु को ऊपर करे ॥ वायु के आघातसे स्वाधिष्ठान में स्थित अग्नि ज्वलित हो जावैगा अग्नि के अघात से अहिराट कुंडली चैतन्य हो जायगी ॥ तब ब्रह्म ग्रंथि भेदन कर विष्णुग्रंथि को भेदन करैगी इत्यादि योग कुंडली उपनिषद् में साधन क्रम है ॥

श्लो०—शास्त्रंविनासुसंबोद्धुंगुरुणाऽपिनशक्यते ॥ यदासद्गुरुलभते शास्त्रंतदासिद्धिःकरेस्थिता ॥ १ ॥ नशास्त्रेणविनासिद्धिर्दृष्टा चैवजगत्त्रये ॥ शरीरंतावदेवस्यात्पण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ॥ २॥ देहमध्येशिखिस्थानंतप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥ त्रिकोणंमनुजानांतु सत्यमुक्तंहिसांकृते ॥ ३ ॥ गुदात्तुद्व्यंगुलादूर्ध्वंमेढ्रात्तुद्व्यङ्गुलादधः ॥ देहमध्यंमुनिप्रोक्तंमुनिजाबालिनोदितम् ॥ ४ ॥ जान्वन्तंपृथिवीह्यंशस्त्वपांपाय्वन्तमुच्यते ॥ हृदयान्तस्तथाग्न्यंशो भ्रूमध्यान्तोऽनिलांशकः ॥५॥ आकाशान्तस्तथाप्राज्ञ मूर्धांशःपरिकीर्तितः ॥ इति जाबालि दर्शने ॥

भा०—शास्त्र के बिना गुरु भी यथार्थ नहीं जान सकते हैं। जब शास्त्र उत्तम मिलता है तब हाथ में सिद्धि आजाती है ॥१॥ शास्त्र बिना सिद्धि त्रिलोक में नहीं मिलती है। ९६ अन्गुल शरीर का प्रमाण है देह के मध्य में तपे सुवर्ण के तुल्य अग्नि स्थान है वह स्थान त्रिकोण है यह सांकृत जी कहते हैं गुदा से दो अंगुल ऊपर लिंग से दो अंगुल नीचे देह मध्य है मुनियों ने कहा है यह जाबालि मुनि का कहना है ॥४॥ तलवा से गांठ तक पृथ्वी का अंश, गांठ से गुदा तक जल का अंश, गुदा से हृदय तक अग्नि का अंश, हृदय से भौंह तक वायु का अंश, भौंह से शीश तक आकाश का अंश है ॥ यह जाबाल दर्शन में है ॥

महाबंधः—पार्ष्णिर्वामस्यपादस्ययोनिस्थानेनियोजयेत् ॥ प्रसार्य दक्षिणंपादंहस्ताभ्यांधारयेद्दृढम् ॥ ११२ ॥ चिबुकंहृदिविन्यस्य पूरयेद्वायुनापुनः ॥ कुंभकेनयथाशक्तिधारयित्वाथरेचयेत् ॥११३ वामांगेनसमभ्यस्यदक्षांगेनततोऽभ्यसेत् ॥ प्रसारितस्तुयःपादस्त मूरुपरिनामयेत् ॥ ११४ ॥ अयमेवमहाबंधउभयत्रैवमभ्यसेत् ॥ अयमेवमहाबंधःसिद्धैरभ्यस्यतेऽनिशम् ॥ भ्रूमध्यदृष्टिरप्येपामुद्रा भवतिखेचरी ॥ १५ ॥ कंठमाकुञ्च्यहृदयेस्थापयेद्दृढयाधियो ॥ बन्धोजालंधराख्योऽयंमृत्युमातंगकेसरी ॥ १६ ॥ बंधोयेनसुषुम्ना यांप्राणस्तूड्डीयतेयतः ॥ उड्यानाख्योहिबंधोऽयंयोगिभिःसमुदा हृतः ॥ १७ ॥ पार्ष्णिभागेनसंपीड्ययोनिमाकुंचयेद्दृढम् ॥ अपानमूर्ध्वमुत्थाप्यमूलबंधोऽयमुच्यते ॥ १८ ॥

भा०—वामपाद की ऐंड़ी योनि के स्थान अर्थात् गुदा

और लिंगके बीच में लगावै। दहना पैर फैला कर दोनों हाथ से दृढ़ पकड़े और दाढ़ी को हृदयमें लगावे फिर शक्ति भर वायु खीचें और शक्ति कुंभक में रोके फिर छोड़ देवे। बायें अंग से अभ्यास करे फिर दहने अंग से अभ्यास करे॥ इसे महाबंध सिद्ध जन कहते हैं भौंह के बीच में दृष्टि लगाने से खेचरी मुद्रा होती है॥ १५॥ कंठ को झुकाकर हृदय में लगावे। यह जालान्धर बंध है मृत्यु गज के लिये केसरी तुल्य है॥ १६॥ सुषुम्ना में जिस बंध से प्राण ऊपर को चढ़ते हैं। उसको उड्यान बंध कहते हैं॥१७॥ ऐड़ी से योनि स्थान दृढ दबावै अपान वायु ऊपर उठावै यह मूल बंध है॥ १८॥

इति श्रीवेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे योगतत्व शिक्षा नाम तृतीयोऽध्यायः

श्री वेदान्त विज्ञानशिक्षा सर्वस्वे

योग महिमा नाम चतुर्थोऽध्यायः।

श्लो०—यद्दृष्ट्वानपरंदृश्यंयद्भूत्वानपुनर्भवः॥
यद्ज्ञात्वानपरंज्ञेयंतद्ब्रह्म त्युपधारयेत्॥ १॥

भा०—जाहि देखि देखन नहीं, जो होइ फेरि न होइ।
जाहि जानि जानब नहीं, ब्रह्म कहावत सोइ॥

श्लो०—योगहीनंवृथाज्ञानंयोगोज्ञानंविनावृथा॥
तस्माज्ज्ञानंचयोगंचमुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्॥ २॥

भा०—योग वृथा है ज्ञान बिन, वृथा ज्ञान बिन योग।
साधक कहं याते उचित, योग ज्ञान उद्योग ॥ ३

श्लो०—योगेनज्ञानंभवतियोगान्मुक्तिर्नसंशयः ॥
तस्माद्योगंतमेवादौसाधकोनित्यमभ्यसेत ॥ ३ ॥

भा०—ज्ञान होत है योग से, योग देत है मुक्ति।
साधक को चहिये प्रथम, करै योग महंयुक्ति ॥ ३ ॥

श्लो०—सत्संगवासनात्यागोऽध्यात्मविद्याविचारणः ॥
प्राणस्पंदनिरोधश्चेत्युपाया मनसोजये ॥ ४ ॥

भा०—त्यागवासना संगसत् अरु अध्यात्म विचार ॥
मनवसहोवै चारि विधि रुके प्राणसंचार॥ ४ ॥

श्लो०—चलेवातेचलेचित्तंनिश्चलेनिश्चलंभवेत ॥
योगीस्थानत्वमाप्नोतिततोवायुंनिरोधयेत्॥ ५ ॥

भा०—वायु चले सों चित्तचल रुके चित्त रुकि जाय॥
योगी पावै स्थान निज वस जो वायू आव ॥ ५ ॥

श्लो०—वज्रासनसमासीनःपायुंभेद्रंद्विपाष्णिना ॥
निरोध्योत्थापयेतेचस्थःसुप्तकुंडलिनींनिजाम् ॥ ६

दोहा—वज्रासन सो बैठिदै, गुदा लिंग महं ऐड़ि।
स्वांस रोकि कुंडलिनी, जगै न होवै टेढ़ि ॥

श्लो०—आधारेलिंगनाभौप्रकटितहृदयेतालुमूले ललाटेद्वेपत्रंपोडशारंद्विदशदशदलंद्वादशार्धचतुष्कम् ॥ सर्वंचक्रंचभित्त्वाह्यमितदलगतंशांतरूपंशिवंस्वंचात्मानंवैनियुज्यात्परमसुखगतोजीवब्रह्मस्वरूपः ॥ ७ ॥

भा०—आधार लिंग अरु नाभि हृदै, कंठहु ललाट तहं चक्रहैं छै।

दल चारि औ छै दश बारा जहँ,सोलह दो दल है सब तिन महँ ॥
सब चक्र भेदि कुंडली चलै, पुनि पहुंचे आखिर सहस दलै।
शिव शांत रूप आत्मा मिलाय, हो जीव ब्रह्म सब दुख नशाय॥
श्लो०–उड्डयानजालंधरमूलबंधशिल्पंतिकंठोदरपायुमूलैः ॥
वंधत्रयेऽस्मिन्परिचीयमानेबंधःकुतोदारुणकालपाशैः ॥८
भा०–उड्यान जलंधर मूल बंध, कंठोदर पाय मूलहु निबंध।
जो तीन बंध ये दृढ़ बांधे, वश होय काल साधन साधे॥
दोहा–साधन द्वादश वर्ष करि, साधक होवै सिद्ध।
वर्षे कुसंग कुस्वाद सो, तब सिधि होय प्रसिद्ध॥
श्लो०–चतुर्विधायोगकलाःप्रवृत्ताहठोलयोमांत्रिकराजसंज्ञकौ ॥
चत्वारएकस्यप्रभेदकावैचैकेनसर्वेप्रभवंतिसिद्धाः ॥ ८ ॥
भा०–एकही योग के भेद चार, हठ लय औ मंत्र राजहु विचार।
इक साधे विधि सो होइ सिद्धि, चारहू शास्त्र विधि है प्रसिद्धि ॥
श्लो०–उत्थाप्यस्वांकुंडलिनींहठाद्वैह्यपानप्राणावनिलौसमोहि॥
चैतद्धठस्तत्रविलीनवृत्तौलयोभवेद्योगविधौनिरुक्तौ ॥ ६ ॥
भा०–हठकरि निज कुंडलिनी उठाय, प्राणहु अपान इक मह मिलाय। हठ माहिं वृत्ति लय होय आय, लय योग होत सोइ युक्ति पाय ॥ ६ ॥
श्लो०–सूर्येणहंचंद्रस्वरेणसंवैसोहंभवेन्नित्यगुरोःकृपातः ॥
सुमंत्रयोगःकथितोमुनीद्रैस्तत्रैववृत्तिःस्थिरतांगताचेत् ॥ १० ॥
भा०–हं सूर्य स्वांस सं चन्द्र स्वांस, गुरु दया भये सोहं सुपास॥
यह मंत्र योग मुनिवर कहते, वृत्ती थिर रूपहिं महं लहते॥
श्लो०–संकल्पहीनंहिमनोयदास्यात्स्थितासमाधिःसरलास्वरूपे॥

नचेष्टतेकापिवहिःसुदृष्टौसराजयोगःकथितोमुनीन्द्रैः ॥ १० ॥

भा०—संकल्प हीनमन चपल नाहिं, थिर सरल समावी रूप माहिं।
चेष्टा न होय जंग वहिमुखी, तव राज योग हो परम सुखी ॥

श्लो०—भूमिंजलेवैप्रविलाप्यचाग्नौजलंसुवायौह्यनलंविधार्य ॥
खेवायुरूपंप्रणिधायचात्मन्खंचैवयोगीलयमेतिनित्यम् ॥ १० ॥

कुं०—जल महं भूमी लय करै, जल अग्नी के माहिं।
अग्नि वायु में लय करै, वायु अकाश समाहिं ॥
बायु अकाश समाहिं, अहं में अकाश लावै।
महतत्व में अहं प्रकृति में, महत मिलावै।
माधवराम प्रकृति करै, ब्रह्म में लय तजि हलचल ॥
ब्रह्मरूप हो जीव, तत्वमिलि तत्व भूमि जल ॥

श्लो०—गच्छन्तिष्टन्यथाकालंवायुःस्वीकरणंपरम् ॥
सर्वकालप्रयोगेनसहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ ११ ॥

दो०—चलते थिरह्वै समय लहि, बायू वश महँ लाय।
सर्व काल साधन किये, वर्ष सहस हो आयु ॥

श्लो०—ऊर्ध्वशून्यमधःशून्यंमध्यशून्यंनिरामयम् ॥ सर्वशून्यंनिराभासंसमाधिस्थस्यलक्षणम् ॥ त्रिशून्यंयोविजानीयात्ससुमुच्येतवंधनात् ॥ १२ ॥

भा०—उर्ध्वशून्य अध शून्य लख, मध्य शून्य निरदोप।
सर्व शून्य आभास विन, गत समाधि की जोख ॥
तीनहु शून्य बिलोकिकै, चेतन आप निहारि।
वंधन से हो मुक्त सो, योगी जन वलिहारि ॥१२॥

श्लो०—निमिषंनिमिषार्धंवाकंभकेनहरिंस्मरन् ॥ सप्तजन्मार्जितं

पापंतत्क्षणेप्रविनश्यति ॥१३॥ नहिपथ्यमपथ्यंवारसाःसर्वेऽपि नोरसाः ॥ अपिभुक्तं विपंघोरंपोयूषमिवजीर्यते ॥ १४ ॥

दोहा—छन आधा छन स्वांस गहि, भजि हरि हो मन लीन।
सात जन्म के पाप सब, छन महं होय विलीन ॥
होय कुपथ्य सुपथ्य तेहि, रसहु निरस ह्वै जाय।
विष खाये पर जीव कहं, अम्मृत सों पचि जाय ॥

श्लो०—अमून्मीरानाम्नीह्युदयपुरराज्यस्यदुहितातथाप्रह्लादोऽसौक नककशिपोःपशुभसुतः ॥ विषंपीत्वाद्वाभ्याममृतफलप्राप्तंभजन तोत्विमंयोगंसत्यंनरवरमुनार्य्यःकुरुतवै ॥

कु०—मीरा वाई उदयपुर, नृप कन्या गुण खान।
हिरण्यकश्यप पुत्र त्यों, जन प्रहलाद बखान ॥
जन प्रहलाद बखान, जहर इन दोउन पिवायो।
हिरदेते हरि भजे, तुर्त अम्मृत फलपायो ॥
माधवराम यहयोग, सत्य हरि भजुहो हीरा।
मत हो कौड़ी मोल, फसड्डी होजा मीरा ॥

श्लो०—नैपालाख्येसुराज्येनृपशुभरचिते पत्तनेवीरगंजेविप्रपुत्रःसु योगीनिजपदनिरतोयोऽवदत्स्वात्ममृत्युम् ॥ मित्रैःमात्रास्वपि त्रावहुविधिविकलैरोपधंकारितंतैर्ज्ञानंदत्त्वाहितेभ्यःपरमपदगतोयो गिमुख्योनितान्तम् ॥ १ ॥

दोहा०—नृप नैपाल सुराज्य महं, वीरगंज वड़ ग्राम।
विप्र पुत्र योगी भयो, लिया अंत निज धाम ॥

छ०—नैपाल राज्य महं वीरगंज, शुभ पत्तन जहं सब रहते हैं।
निज २ स्वधर्म पालन करते, राजा भी जिनको चहते हैं ॥

तहं एक विप्र का पुत्र रहा, इस कारण योगी कहते हैं।
दिन पंद्रह पहले मृत्यु कही, घरवाले विस्मय लहते हैं॥
यह तन से अच्छा चंगा हैं, नहि रोग कोइ इसके तनमें।
कैसे यह मर जावैगा झट, पितु मातु नारि समझै मनमें॥
दो चार दिवस में रोग भया, वह मगन न कुछ भी दुख मानैं।
प्रारब्ध भोग का भोग मान, भीतर से सुरति योग ठानै॥
दो०—मातु पिता अरु मित्र सब, औषध करैं विचार।
यह समझावें सबहिं को, क्यों लेते शिर हार॥
छ०—नहिं मानैं वे कहे करो खुसी, आखिर में सबकर हार गये
दिन निकट आगया चलने का, घर वाले सब वेकार भये॥
समझावें पितु माता को यह, नहिं कोई किसी का संगी है।
सब कर्म भोगते हैं अपना, नाहक समझे मन अंगी है॥
कितने ही बार पितु मातु पुत्र. संसार में प्राणी होता है।
ले जन्म जलधि ऊपर आवें, मर २ के खावें गोता है॥
पालक परमात्मा विश्वंभर, सब ही का पालन करता है।
यह जीव नहक कहि २ मेरा, पचि २ के निशदिन मरता है॥
दो०—सोच छोड़दो मातु पितु, धरो हिये दृढ़ ज्ञान।
निज माता पितु से प्रथम, गये कृष्न भगवान॥
छ०—इस युग में मौत का नियम नहीं, जीवों के कर्म तो न्यारे हैं
लखिये पितु मातु मेरे दिल में, नाहक होते लाचारे हैं॥
तब पिता कहे जो ऐसा था, काहे को नारि विवाही थी।
सुत कहे पिता जी दोष नहीं, निज कर्म भोगने आई थी॥
बहु भांत ज्ञान उपदेश किया, पांचवा दिवस जब आया है।

आतुर संन्यास देहु मुझको, संन्यासी एक बुलाया है ॥
बहु बात चीत कर पिता गया, दश नामी साधू आय कहे ।
बच्चा तू तो अच्छा तन से, क्यों सन्यासी पन लेन चहे ॥
दो०—बाबा मेरी विनय सुनि, मोहि देहु सन्यास ।
अब नहि बार लगाइये, होवै मोहिं सुपास ॥
छ०—सन्यास दिया तबतो उसके, दिल में न विकलता आई है ।
बाहर घर वाले देख रहे, निज वृत्ति योग महं लाई है ॥
पहले ईश्वर से विनय करी, बहु भांति न हम कह सकते हैं ।
उस देस की बानी नहिं जानें, इससे मनहीं मन रखते हैं ॥
इस तरह पहाड़ी सुजन सदा, ईश्वर की विनती करते हैं ।
कुछ सुनी सुनाई गलत सत्य, कह सुन के हम अनुसरते हैं ॥
श्लो०भा—नधनजान्यासंग्मानतइजनजान्यासंगपनीसंगीचारेदि नकोसकलफजितीक्योंबुझभनी ॥ इशास्त्रादीभंछन्नवुझपरियो योमरणमाप्रभूतस्मोत्त्परछोंशरणहजुरैकाचरणमा ॥१॥ मनैपारोर्भ्के मेंविपयतरचंचलछनजितीविनायोगकासाधननगरिकनजीतनैछ फजिती, कहीलेहोधन्याकतरिअवपाऊंमरणमाप्रभूतस्मापरछोंशर णहजुरैकाचरणमा ॥२॥
छ०—उस ब्रह्ममें वृत्ती निरोध कर, निज फूल सी काया त्यागी है ।
जो इस प्रकार से तजे प्रान, जग मांहि सोइ बड़ भागी है ॥
होवैगा पुत्र सच्चा तुम्हरे, मरने के पहले कह के मरा ।
आखिर में पिता के ज्ञानमई, सुन उपजा अन्त में बहुत खरा ॥
नर नारि देह को एक दिवस, तजदेना सबहि जरूरी है ।
पर मनथिर करके भजन बिना, सब करनी यहां अधूरी है ॥

चतुराई सफल सबहीं तुम्हारि, प्रहलाद औ मीरा हो जावो।
तन त्याग फूल सा अन्त समै, आनन्द ब्रह्म ईश्वर पावो ॥
दो०—योग बिना संसार में, सुख पावै नहिं कोय।
कृश्न मिलन शुभयोग है, जग सुख योग न होय ॥
योग कथा पूरन करो, धरो हिये नर नारि।
माधवराम विनय करें, तुमहूं लेहु विचारि ॥

भजन—योग गति गोपिन की लो धार।
नहिं आसन नहिं स्वांस चढ़ावे, नहीं चक्र आधार ॥
राज योग निशि दिन साधेहैं, सुरति कृश्न मय तार।
आपनरूप भुलानी छन २ जहं तहं हरिहिं निहार ॥
घर बाहर हरि कृष्ण विलोकें, कुंजन कदमन क्यार।
बहत नैन जल विरहअग्नि ज्वर,कृष्णहि कृश्नपुकार ॥
ऊधव योग सिखावन आये, सत्य योग लियो सार।
माधवराम कृष्ण रट जिनके, तिनपै है बलिहार ॥

इति श्रीवेदाँत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे योग महिमा
नाम चतुर्थोऽध्यायः।

श्री वेदान्त विज्ञानशिक्षा सर्वस्वे

योग शास्त्र नाम पंचमोऽध्यायः।

श्लो०—अतःपरंप्रवक्ष्यामिनाड़ीचक्रस्यनिर्णयम् ॥ मूलाधारत्रिकोणस्थासुषुम्नाद्वादशांगुला ॥ मूलार्धच्छिन्नवंशाभाब्रह्मनाड़ीतिसा

स्मृता ॥ १७ ॥ इडाचपिंगलाचैवतस्याःपार्श्वद्वयेगते ॥ विल म्बिन्यामनुस्यूतेनासिकान्तमुपागते ॥ १८ ॥ इडायांहेमरूपेण, वायुर्वामेनगच्छति ॥ पिंगलायांतुसूर्यात्मायातिदक्षिणपार्श्वतः ॥ १९ ॥ विलंबिनीयानाड़ीवैव्यक्तानाभौप्रतिष्ठिता ॥ तत्रानाड्यः समुत्पन्नास्तिर्यगूर्ध्वमधोमुखाः ॥ २० ॥ तन्नाभिचक्रमित्युक्तं कुक्कुटाण्डमिवस्थितम् ॥ गांधारीहस्तिजिह्वाचतस्मान्नेत्रद्वयंगते ॥ २१ पूषाचालंबुषाचैवश्रोत्रद्वयमुपागते ॥ शूरानाममहानाड़ीतस्माद् मध्यमाश्रिता ॥२२॥ विश्वोदरीपानाड़ीमाभुंक्तेऽन्नंचतुर्विधम् ॥ सरस्वतीयावैनाड़ीसाजिह्वांतंप्रसर्पति ॥२३॥राकाह्वपाचयानाड़ी पीत्वातुसलिलंक्षणात् ॥ क्षुतमुत्पादयेद्घ्राणेलेष्माणंसंचिनोतिवै ॥ २४ ॥ कंठकूपोद्भवानाड़ीशंखिन्याख्यात्वधोमुखी ॥ अन्नमा रंसमादायमूर्ध्निसंचिनुतेसदा ॥२५॥ नाभेरधोगतातिस्रोनाड्य स्ताःस्युरधोमुखाः ॥ मलंत्यजेत्कुहूनाड़ीमूत्रंमुंचतिवारूणी ॥२६ चित्राख्यासीविनीनाड़ीशुक्रमोचनकारिणी ॥ नाड़ीचक्रमिदंप्रो क्तंविंदुरूपमतःशृणु ॥ २७ ॥

स्थूलंसूक्ष्मंपरंचेतितित्रिविधंब्रह्मणोवपुः ॥ स्थूलंशुक्रात्मकंविंदुः पंचाग्निस्वरूपकम् ॥ २८ ॥ सोमात्मकःपरःप्रोक्तःसदासाक्षीस दाच्युतः ॥ पातालानामधोभागेकालाग्निर्यःप्रतिष्ठितः ॥ २९॥ समूलाग्निःशरीरेऽग्निर्यस्मान्नादःप्रजायते ॥ वड़वाग्निःशरीर स्थोह्यस्थिमध्येप्रवर्तते ॥३०॥ इत्यादि आधारेपश्चिमंलिंगंकवा टंतत्रविद्यते ॥ तस्योद्घाटनमात्रेणमुच्यतेभवबंधनात् ॥

भाषा—अब नाड़ी चक्र का निर्णय कहते हैं। मूलाधार त्रिकोणस्थ सुषुम्ना बारह अंगुल की नाड़ी है मूल अर्ध छिन्न

वंश की तरह ब्रह्म नाड़ी यही है ॥१७॥ इड़ा और पिंगला दो नाड़ी सुषुम्ना नाड़ी के अगल वगल में हैं, विलम्बिनी नाड़ी में मिलके नासिकांत में पहुंची है ॥ १८ ॥ ईड़ा में हेम रूप से वायु बाईं ओर से चले हैं, पिंगला में सूर्य रूप से दहिनी वगल में चले हैं ॥ १९ ॥ विलंबिनी नाड़ी नाभि में स्थित है तहां ही से तिरछी ऊपर नीचे मुखवाली नाड़ी है ॥ २० ॥ इसी को नाभि चक्र कहते हैं कुक्कुट (मुर्गा) के अन्ड के तुल्य स्थित है उसमें से गांधारी हस्ति जिन्हा दोनों नेत्र में गई हैं ॥ २१ ॥ पूषा और अलंबुषा दो नाड़ी दोनों कानों में गई हैं ॥ शूरा नाम की महानाड़ी भौंह के वीच में स्थित है ॥ २२ ॥ विश्वोदरी नाड़ी चार प्रकार का अन्न भोजन करती है, सरस्वती नाम की नाड़ी जिन्हा में स्थित है ॥ २३ ॥ राका नाड़ी जल पीकर छींक और जुखाम पैदा करती है ॥ २४ ॥ कंठ में शंखिनी नाड़ी नीचे को मुखवाली अन्नसार लेकर शिर में इकट्ठा करती है ॥ २५ ॥ नाभि के नीचे तीन नाड़ी हैं उनमें से कुहू नाड़ी मल वाहर करती है वारुणी मूत्र वाहर निकालती है चित्रा सीवनी नाड़ी वीर्य छोड़ती है। यह संक्षेप से नाड़ी चक्र वर्णन है।

स्थूलसूक्ष्म और पर यह त्रिविध ब्रह्म का शरीर है स्थूल वीर्यात्मक सूक्ष्म पंचाग्नि स्वरूप और सोमात्मक पर शरीर कहा गया है। साक्षी अच्युत है, पाताल अधोभाग में कालाग्नि स्थित है वह मूलाग्नि है उसीसे शब्द उत्पन्न होता है वड़वाग्नि शरीर में हड्डियों में स्थित है आधार में पश्चिम

लिंग तहां कपाट है उसके खुलने ही से भव बंधन छूट जाता है ॥

इति श्री विज्ञान वेदांत शिक्षा सर्वस्वे योग शास्त्र नाम पंचमोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

ब्रह्मविद्योपनिषद् नाम षष्ठोऽध्यायः

श्लो०—ॐमित्येकाक्षरंब्रह्मयदुक्तंब्रह्मवादिभिः ॥ शरीरंतस्यवक्ष्यामिस्थानंकालत्रयंतथा ॥ तत्रदेवास्त्रयःप्रोक्तालोकावेदास्त्रयोऽग्नयः ॥ तिस्रोमात्रार्धमात्राचत्र्यक्षरस्यशिवस्यच ॥ ऋग्वेदोगार्हपत्यंचपृथिवीब्रह्मएवच ॥ अकारस्यशरीरंतुव्याख्यातंब्रह्मवादिभिः ॥४॥ यजुर्वेदोंऽतरिक्षंचदक्षिणाग्निस्तथैवच ॥ विष्णुश्च भगवान्देवउकारपरिकीर्तितः ॥ ५ ॥ सामवेदस्तथाद्यौश्चाहवनीयस्तथैवच ॥ ईश्वरःपरमोदेवोमकारःपरकीर्तितः ॥ ६ ॥ सूर्यमंडलमध्येऽथह्यकारःशंखमध्यगः ॥ उकारश्चंद्रसंकाशस्तस्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ ७ ॥ मकारस्त्वग्निसंकाशोविधूमोविद्युतोपमः ॥ तिस्रोमात्रास्तथाज्ञेयाःसूर्यसोमाग्निरूपिणः ॥ ८ ॥ शिखातुदीपसंकाशातस्मिन्नुपरिवर्तते ॥ अर्द्धमात्रातथाज्ञेयाप्रणवस्योपरिस्थिता ॥ ६ ॥ पद्मसूत्रनिभासूक्ष्माशिखासादृश्यतेपरा ॥ सानाडीसूर्यसंकाशासूर्यंभित्वातथापरा ॥ १० ॥ द्विसप्ततिसहस्राणिनाडीभित्वाचमर्धनि ॥ वरदःसर्वभूतानांसर्वव्याप्यावति

घति ॥ ११ ॥ कांस्यघंटानिनादस्तुयथालीयतिशांतये ॥ ॐ कारस्तुतथायोज्यःशांतयेसर्वमिच्छता ॥ १२ ॥ यस्मिन्विलीयतेशब्दस्तत्परंब्रह्मगीयते ॥ धियंहिलीयतेब्रह्मसोऽमृतत्वायकल्पते ॥ १३ ॥ वायुःप्राणस्तथाकाशस्त्रिविधोजीवसंज्ञकः ॥ सजीवःप्राणइत्युक्तोवालाग्रशतकल्पितः ॥ १४ ॥ सकारंचहकारंचजीवोजपतिसर्वदा ॥१६॥ नाभिकंदेसमौकृत्वाप्राणापानौसमाहितः ॥ मस्तकस्थामृतास्वादंपीत्वाध्यानेनसादरम् ॥ २२॥ दीपाकारंमहादेवंज्वलंतंनाभिमध्यमे ॥ अभिषिच्यामृतेनैवहंसहंसेतियोवदेत् ॥ २३ ॥ हंसएवपरंतत्वंहंसमंत्रंसमुच्चरेत् ॥ ससिद्धःससुखीलोकेगुरुभक्तिलभेतवै ॥ ब्रह्मणोहृदयस्थानंकंठेविष्णुःसमाश्रितः ॥ तालुमध्येस्थितोरुद्रोललाटस्थोमहेश्वरः ॥ ४१ ॥ नासाग्रेअच्युतंविद्यात्तस्यांतेतुपरंपदम् ॥

सदासमाधिंकुर्वीतहंसमंत्रमनुस्मरन् ॥ निर्मलस्फटिकाकारंदिव्यरूपमनुत्तमम् ॥ ६५ ॥ मध्यदेशेपरंहंसंज्ञानमुद्रास्वरूपकम् ॥ प्राणोऽपानःसमानश्चोदानव्यानौचवायवः ॥ ६७ ॥ पंचकर्मेंद्रियैर्युक्ताक्रियाशक्तिबलोद्यताः ॥ पावकःशक्तिमध्येतुनाभिचक्रेरविःस्थितः ॥ ६८ ॥ बंधमुद्राकृतायेननासाग्रेतुस्वलोचने ॥ अकारेवह्निरित्याहुरुकारेहृदिसंस्थितः ॥६९॥ मकारेचभ्रुवोर्मध्ये प्राणशक्त्याप्रबोधयेत् ॥ ब्रह्मग्रंथिरकारेचविष्णुग्रंथिर्हृदिस्थितः ॥७० रुद्रग्रन्थिर्भ्रुवोर्मध्येभिद्यतेऽक्षरवायुना ॥ अकारेसंस्थितोब्रह्माउकारेविष्णुरास्थितः ॥ ७१ ॥ मकारेसंस्थितोरुद्रस्ततोऽस्यान्तःपरात्परः ॥ कंठंसंकुच्यनाड्यादौस्तंभितेयेनशक्तितः ॥ ७२ ॥ रसनापीड्यमानेयंषोडशीवोर्ध्वगामिनी ॥ त्रिकूटंत्रिविधाचैवगो

त्रासंनिखरंतथा ॥७३॥ त्रिशंखवज्रमोंकारमूर्ध्वनालंभ्रुवोमुखम् ॥ कुंडलींचालयन्प्राणान्भेदयन्शशिमण्डलम् ॥ ७४ ॥ साधयन् वज्रकुंभानिनवद्वाराणिबंधयेत् ॥ सुमनःपवनारूढःसरागोनिर्गुणस्तथा ॥७५॥ ब्रह्मस्थानेतुनादःस्याच्छाकिन्यामृतवर्षिणी ॥ षट्चक्रमण्डलोद्धारंज्ञानदीपंप्रकाशयेत् ॥ ७६ ॥ सर्वभूतस्थितं देवंसर्वेशंनित्यमर्चयेत ॥ आत्मरूपंतमालोक्यज्ञानरूपंनिरामयम् दृश्यंतंदिव्यरूपेणसर्वव्यापीनिरंजनः ॥ हंसहंसवदेद्वाक्यंप्राणिनंदेहमाश्रितः ॥ समाणापानयोर्ग्रंथिरजपेत्यभिधीयते ॥७८॥ सहस्रमेकंद्वयुतंषट्शतंचैवसर्वदा ॥ उच्चरन्पठितोहंसःसोहमित्यभिधीयते ॥ ७९ ॥ पूर्वभागेह्यधोलिंगंशिखिन्यांचैवपश्चिमम् ॥ ज्योतिर्लिंगंभ्रुवोर्मध्येनित्यंध्यायेत्सदायतिः ॥ ८० ॥ सर्वाधिष्ठानसन्मात्रःस्वात्मबंधहरोऽस्म्यहम् ॥ सर्वग्रासोऽस्म्यहंसर्वदृष्टासर्वानुभूरहम् ॥ ८१ ॥

इति श्री वेदान्त विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे ब्रह्म विद्योपनिषद नाम षष्ठोऽध्यायः ।

श्री वेदान्त विज्ञानशिक्षा सर्वस्वे

बह्वृचोपनिषत् मंत्रशास्त्र नाम सप्तमोऽध्यायः ।

श्लो०—बह्वृचाख्यब्रह्मविद्यामहाखंडार्थवभवम् ॥ अखंडानंदसाम्राज्यंरामचन्द्रपदंभजे ॥

हरिःॐदेवीह्येकाग्रआसीत्साजगदंडमवासृजत् ॥ कामकलेतिविज्ञायते॥शृंगारकलेतिविज्ञायते ॥ तस्याएकब्रह्माअजीजनत् ॥

विष्णुरजीजनत् ॥ रुद्रोऽजीजनत् ॥ सर्वेमरुद्गणाअजीजनन् ॥ गंधर्वाप्सरसःकिन्नरावादित्रवादिनः समन्तादजीजनन् ॥ सर्व मजीजनत् ॥ सर्वशाक्तमजीजनत् ॥ अण्डजंस्वेदजमुद्भिजंजरा युजंयत्किंचैतत्प्राणिस्थावरजंगमंमनुष्यमजीजनत् । सैषापराश क्तिः सैषासांभवीविद्याकादिविद्येतिवा हादिविद्येति वा सादि विद्येतिवारहस्यम् ॥ ओमोंवाचिप्रतिष्ठासैवपुरत्रयंशरीरत्रयंवाप्य वहिरन्तरवभासयन्तीदेशकालवस्त्वन्तरसङ्गात्महात्रिपुर सुन्दरीवै प्रत्यक्चितिः ॥ सैवात्माततोऽन्यदसत्यमनात्माअतएषाब्रह्मसं वित्तिःभावाभावकलाविनिर्मुक्ताचिदाद्या द्वितीयब्रह्मसंवित्तिःस— च्चिदानंदलहरीमहात्रिपुरसुन्दरीवहिरन्तरमनुप्रविश्यस्वयमेकैवविभातियदस्तिसन्मात्रायद्विभातिचिन्मात्रं । यत्प्रियमानंदंतदेत्स र्वाकारामहात्रिपुरसुन्दरी । त्वंचाहंचसर्वंविश्वंसर्वदेवता । इतरत्स र्वंमहात्रिपुरसुन्दरी । सत्यमेकंललिताख्यंवस्तुतदद्वितीयमखण्डार्थंपरंब्रह्म । पंचरूपपरित्यागादस्वरूपप्रहाणतः ॥ अधिष्टानं परंतत्वमेकंसच्छिष्यते ॥ इति ॥ प्रज्ञानंब्रह्मेतिवाअहंब्रह्मास्मी तिवाभाष्यते ॥ तत्त्वमसीत्येवसंभाष्यते । अयमात्माब्रह्मेतिवा ब्रह्मैवाहस्मीत्तिवायोऽहमस्मीतिवा सोहमस्मीतिवायोऽसौसोऽहम स्मीतियाभाष्यते सैषाषोडशीश्रीविद्यापंचदशाक्षरीश्रीमहात्रिपुर सुन्दरीवालाम्बिकेतिवालेतिवामातंगीतिस्वयंवरकल्याणीतिभुवने श्वरीतिवाचामुंडेतिचण्डेति वाराहीतितिरस्करिणीतिराजमातंगीति वाशुकश्यामलेतिवालघुश्यामलेतिअश्वारूढे तिवाप्रत्यंगिराधूमा वतीसावित्रीसरस्वतीब्रह्मानंदकलेतिऋचोअक्षरेतिपरमेव्योम्न ॥ यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः ॥ यतश्चवेदंकिमृचाकरिष्यति ॥

यइत्ताद्धिदुस्तइमेसमासतेइत्युपनिषत् ॥ ॐवान्ङ्मेमनसीति शांतिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

श्लो–आसनशुद्धिभूतशुद्धिर्वांगन्यासंकरन्यासादिकंविधायपाप पुरुषंविशोध्यआत्मानममृतीकृत्यविधिनादेवं संपूज्यतत्प्रसादान्मू लाधारस्थकुन्डलिन्या संयोज्यतांषट्चक्रवर्णदेवताभिःसुषुम्नामा र्गेणब्रह्मरंध्रस्थितपरमशिवेनसंयोज्यप्रसुप्तभुजगाकारां सार्धत्रि वलयांतडित्कोटिसमप्रभांनीवारसुत्रतन्वींकुन्डलिनीं विभाव्यहुं कारेण उत्थाप्यषट्दशद्वादशषोड़शद्विदलसर्वचक्राणिनिर्भिद्यस हस्रदलेपरमशिवेस्वस्वरूपंयोजयेत् ॥१॥

श्लो०–आधारेलिंगनाभौप्रकटितहृदयेतालुमूलेललाटेद्वेपत्रेषोड़ शारेद्विदशदलदले द्वादशार्धेचतुष्के ॥ वासांतेबालमध्येडफकठस हितेकंठदेशेस्वराणांहंक्षंतत्त्वार्थयुक्तंसकलदलगतंवर्णरूपंनमामि ॥

लंभूमेःपादजानोकविवरकथितंवंजलंमेढ्रदेशेरंवन्हेश्चोदरेयं सुत नुगतिगतंवायुवीजंहृदब्जात् ॥ हंचाकाशोभ्रुकुट्याःशिरसिच कथितःसाधकैश्चेज्जिताःस्युर्वायुंभूमिंजलाग्निंसुगगनपटलंविश्व जेतापुमान्स्यात् ॥२॥

इति श्रीवेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे वह्वृचोपनिषत् मंत्रशास्त्र नाम सप्तमोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

ब्रह्मनिरू० इशावास्योपनिषत् नाम अष्टमोऽध्यायः ।

मंत्रः—तदेजतितन्नैजतितद्दूरेतदंतिके तदन्तरस्यसर्वस्यतदुसर्वस्यास्यबाह्यतः ॥ ५ ॥

टीका—तदात्मतत्वंयत्प्रकृतंतदेजतिचलतितदेवचनैजतिस्वतोनैवचलतिस्वतोऽचलमेवसंचलतीवेत्यर्थः ॥ किंतद्दूरेवर्षकोटिशतैरप्यविदुषामप्राप्यत्वाद्दूरइव । ततउअन्तिकइतिच्छेदः । तद्वन्तिकेसमीपेऽत्यन्तमेवविदुषामात्मत्वान्नकेवलंदूरेऽन्तिकेच । तदन्तरभ्यन्तरेऽस्यसर्वस्य । यआत्मासर्वान्तरइतिश्रुतेः । अस्यसर्वस्यजगतोनामरूपक्रियात्मकस्यतदुअपि सर्वस्यास्यबाह्यतोव्यापकत्वादाकाशवन्निरतिशयसूक्ष्मत्वादन्तः । प्रज्ञानयनएवेतिचशासनान्निरन्तरंच ॥ ५ ॥

भाषा—वह आत्म तत्व चलता है नहीं चलता है दूर है, निकट है, सबके बाहर भीतर है ॥

मंत्रः—सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ॥ कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

टी० शां० भा०—सपर्यगात्सयथोक्तआत्मापर्यगात्परिसमन्तोदगाद्गतवानाकाशवद्व्यापीत्यर्थः ॥ शुक्रंशुद्धंज्योतिष्मद्दीप्तिमानित्यर्थः ॥ अकायमशरीरोलिङ्गशरीरवर्जितइत्यर्थः ॥ अव्र

णमक्षतम् ॥ अस्नाविरंस्नावाःशिरायस्मिन्नविद्यन्तइत्यस्नाविरम् ॥ अव्रणमस्नाविरमित्याभ्यांस्थूलशरीरप्रतिषेधः ॥ शुद्धं निर्मलमविद्यामलरहितमितिकारणशरीरप्रतिषेधः अपापविद्धं धर्माधर्मादिपापवर्जितम् ॥ शुक्रमित्यादीनिवचांसिपुंलिङ्गत्वेनोपसंहारात् ॥ कविःक्रान्तदर्शीसर्वदृक्नान्योऽतोस्तिद्रष्टेत्यादिश्रुतेः ॥ मनीषीमनसईषितासर्वज्ञईश्वरइत्यर्थः ॥ परिभूःसर्वेषांपर्युपरिभवतीतिपरिभूः॥ स्वयंभूःस्वयमेवभवतीतियेषामुपरिभवति यश्चोपरिभवतिससर्वःस्वयमेवभवतीतिस्वयंभूः ॥ सनित्यमुक्त ईश्वरोयाथातथ्यात् सर्वज्ञत्वाद्यथायथाभावोयाथातथ्यंतस्माद्यथाभूतकर्मफलसाधनतोऽर्थान्कर्तव्य पदार्थान्व्यदधाद्विहितान्यथानुरूपंव्यभजदित्यर्थः ॥ शाश्वतीभ्योनित्याभ्यःसमाभ्यःसंवत्सराख्येभ्यःप्रजापतिभ्यइत्यर्थः ॥८॥

भाषा—वह आत्मा सबके चारों तरफ आकाश की तरह व्याप्त है शुद्ध ज्योतिष्मान् है लिङ्ग शरीर से रहित है व्रण नाड़ी से रहित अर्थात् स्थूल शरीर से रहित है शुद्ध अपापविद्ध कारण शरीर से रहित है कवि सर्वज्ञ सबके ऊपर स्वयंभू यथार्थ कर्म फलदाता है अनंतकाल के लिये ॥८॥

मंत्रः—इहचेदवेदीदथसत्यमस्तिनचेदिहावेदीन्महतीविनष्टिः ॥ भूतेषुभूतेषुविचित्यधीराःप्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवन्ति ॥ १३ ॥

टीका—कष्टाखलुसुरनरतिर्यक्प्रेतादिषुसंसारदुःखबहुलेषुप्राणिनिकायेषुजन्मजरामरणरोगादिसंप्राप्तिरज्ञानदतइहैव चेत्मनुष्योऽधिकृतःसमर्थःसन्यद्यवेदीदात्मानंयथोक्तलक्षणंविदितवान्यथोक्तेनप्रकारेण। अथतदस्तिसत्यंमनुष्यजन्मन्यस्मिन्नविनाशोऽर्थ

वत्तावासद्भावोवापरमार्थतासत्यंविद्यते । न चेदिहावेदीदिति । न चेदिहजीवंश्चे दधिकृतोऽवेदीन्नविदितवांस्तदामहतीदीर्घाऽनन्ता विनष्टिर्विनाशनंजन्मजरामरणादिप्रबन्धाविच्छेदलक्षणासंसारग तिस्तस्मादेवंगुणदोषौविजानन्तोब्राह्मणाभूतेषुभूतेषुसर्वभूतेषुस्थांर वेषुचरेषुचैकमात्मतत्त्वंब्रह्मविचित्यविज्ञायसाक्षात्कृत्यधीराधीमन्तः प्रेत्यव्यावृत्यममाहंभावलक्षणादविद्यारूपादस्माल्लोकादुपरम्यस र्वात्मैकत्वभावमद्वैतमापन्नाःसन्तोऽमृता भवन्तिब्रह्मैवभवंतीत्य र्थःसयोहवैतत्परमंब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति ॥

यहां जिसने आत्मा को समझ लिया तो सत्य है यदि नहीं जाना तो अत्यन्त नाश को प्राप्त भया । सब जीवों में आत्मा को शोधन कर धीर पुरुष मुक्त होजाता है ।

मंत्रः—यस्यामतंतस्यमतंमतंयस्यनवेदसः ॥
अविज्ञानंविजानतांविज्ञातमविजानताम् ॥११॥ ३ ॥

टीका—यस्यामतंयस्यविविदिषाप्रयुक्तप्रवृत्तस्यसाधकस्यामतमवि ज्ञातमविदितंब्रह्म स्यात्मतत्त्वनिश्चयफलावसानावबोधतयाविवि दिषानिवृत्तेत्यभिप्रायः । तस्यमतंज्ञानंतेनविदितंब्रह्मयेनाविषय त्वेनाऽऽत्मत्वेनप्रतिवुद्धमित्यर्थः । कथंमतंविदितंज्ञातंमयाब्रह्मेति यस्यविज्ञानंसमिथ्यादर्शीविपरीतविज्ञानो विदितादन्यत्वाद्ब्रह्म णोनसनविजानाति ॥

जिसने ब्रह्म को अज्ञेय समझा उसने ब्रह्म को समझ लिया जिसने ब्रह्म को विषय से ज्ञात समझा उसने नहीं जाना । ज्ञाताभिमानी को अज्ञात है अभिमान शून्य को ज्ञात है ॥११

मंत्रः—यतश्चोदेतिसूर्योऽस्तंयत्रचगच्छति ॥

तंदेवाःसर्वेअर्पितास्तदुनात्येतिकश्चन । एतद्वै तत् ॥ ६

टीका—यस्मात्प्राणादुदेत्युत्तिष्ठतिसूर्योऽस्तंनिम्लोचनंयत्र यस्मिन्ने वचप्राणेऽहन्यहनिगच्छतितंप्राणमात्मानंदेवाअग्नादयाऽधिदैवं वागादयश्चाध्यात्मंसर्वेविश्वेऽराइवरथनाभावर्पिताः संप्रवेशिताः स्थितिकालेसोऽपिब्रह्मैव । तदेतत्सर्वात्मकंब्रह्म । तदुनात्येतिना तीत्यतदात्मकतांतदन्यत्त्वंगच्छतिकश्चनकश्चिदपि। एतद्वै तत्॥

भाषा—जिससे सूर्य उदय होता है जहां सूर्य अस्त होता है जिजमें सब देव सर्पित हैं, जिसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता , वही ब्रह्म है ॥ ६ ॥

मंत्रः—यदेवेहतदमुत्रयदमुत्रतदन्विह ॥

मृत्योःसमृत्युमाप्नोतियइहनानेहपश्यति ॥ १० ॥

टीका—यदेवेहकार्यकारणोपासमन्वितंसंसारधर्मवदवभासमानम विवेकिनांतदेवस्वात्मस्थममुत्रनित्यविज्ञानघनस्वभावंसर्वसंसारध र्मवर्जितंब्रह्म । यच्चामुत्रामुष्मिन्नात्मनिस्थितंतदेवेहनामरूपका र्यकारणोपाधिमनुविभाव्यमानंनान्यत् । तत्रैवंसत्युपाधिस्वभाव भेददृष्टिलक्षणया ॥ अविद्ययामोहितःसन्यइहब्रह्मण्यनानाभूतेप रस्मादन्योहंमत्तोऽन्यत्परंब्रह्मे तिनानेव भिन्नमिवपश्यत्युपलभतेस मृत्योर्मरणान्मरणंमृत्युंपुनर्जन्ममरणभावमाप्नोतिप्रतिपद्यते ॥ तस्मात्तथानपश्येत् ॥ विज्ञानैकरसंनैरन्तर्येणाऽऽकाशवत्परिपूर्णं ब्रह्मैवाहमस्मीतिपश्येदितिवाक्यार्थः ॥ १० ॥

जो यहाँ है वही परलोक में है जो परलोक में है वह यहां है मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो नाना रूप से देखता है ॥ १० ॥

मंत्रः—मनसैवदेमाप्तव्यंनेहनानास्तिकिंचिन ॥
मृत्योःसमृत्युंगच्छतियइहनानेवपश्यति ॥ ११ ॥
टीका—प्रागेकत्वविज्ञानादाचार्यागमसंस्कृतेनमनसेदंब्रह्मैकरसमाप्तव्यमात्मैवनान्यदस्तीति । आप्तेचनानात्वप्रत्युपस्थापिकाया अविद्यायानिवृत्तत्वादिहब्रह्मणि नाना नास्तिकिंचनाणुमात्रमपि । यस्तुपुनरविद्यातिमिरदृष्टिंनमुञ्चतिनानेवपश्यतिसमृत्योर्मृत्युंगच्छत्येवस्वल्पमपिभेदमध्यारोपयन्नित्यर्थः ॥ ११ ॥
भाषा—शुद्ध मनही से यह ब्रह्म प्राप्त होने के योग्य है यहां नानारूप से कुछ नहीं है, मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो नाना भांति से देखता है ॥ ११ ॥
मंत्रः—अङ्गुष्ठमात्रःपुरुषोज्योतिरिवाधूमकः ॥
ईशानोभूतभव्यस्यसएवाद्यसउश्वः ॥ एतद्वैतत् ॥१२
टीका—अंगुष्ठमात्रःपुरुषो ज्योतिरिवाधूमकोऽधूमकमितियुक्तंज्योतिष्परत्वात् । यस्त्वेवंलक्षितोयोगिभिर्हृदयईशानोभूतभव्यस्यस नित्यःकूटस्थोऽद्यदानींप्राणिषुवर्तमानः सउश्वोऽपिवर्तिष्यतेनान्यस्तत्समोऽन्यश्चजनिष्यतइत्यर्थः ॥ अनेननायमस्तीतिचक इत्ययंपक्षोन्यायतोऽप्राप्तोऽपिस्ववचनेन श्रुत्याप्रत्युक्तस्तथाक्षणमङ्गवादश्च ॥ १२ ॥
भाषा—अङ्गुष्ठमात्र पुरुष जोतिः सरूप धूम से रहित है वह भूत भविष्य का ईश्वर है वह आज कल सदा नित्य है वही ब्रह्म है ॥ १२ ॥
पुनरपिभेददर्शनापवादंब्रह्मणआह ॥
मंत्रः—यथोदकंदुर्गेवृष्टंपर्वतेषुविधावति ॥

एवंधर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥

टीका–यथोदकंदुर्गेदुर्गमेदेशउच्छ्रिते वृष्टं सिक्तंपर्वतेपुपर्वतवत्सुनिम्नप्रदेशेपुविधावतिविकीर्णं सद्विनश्यतिएवंधर्मानात्मनोभिन्नपृथक्पश्यन्पृथगेवप्रतिशरीरं पश्यंस्तानेवशरीरभेदानुवर्तिनोऽनुविधावति । शरीरभेदमेवपृथक्पुनःपुनःप्रतिपद्यतइत्यर्थः॥१४॥

मंत्रः–यथोदकंशुद्धेशुद्धमासिक्तं तादृगेवभवति ॥

एवंमुनेर्विजानतआत्माभवतिगौतम ॥ १५ ॥

भाषा–जिस भांति दुर्गम स्थल में वर्षा हुआ, जल इधर उधर स्थलों में जाकर छिन्न भिन्न हो जाता है इसी भांति आत्मा से पृथक शरीर भेद से धर्मानुवर्ती अनेक शरीर प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

टीका–यथोदकंशुद्धे प्रसन्नेशुद्धं प्रसन्नमासिक्तं प्रक्षिप्तमेकरसमेव नान्यथा तादृगेवभवत्यात्माऽप्येवमेवभवत्येकत्वंविजानतोमुनेर्मननशीलस्यहेगौतम । तस्मात्कुतार्किकभेददृष्टिंनास्तिकदृष्टिंचोज्झित्वामातृसहस्रेभ्योऽपिहितैषिणावेदेनो दिष्टमात्मदर्शनंशांतदर्पैरादरणीयमित्यर्थः ॥ १५ ॥

भाषा–जैसे शुद्ध स्थल में वर्षा हुआ जल शुद्ध एक रूप होता है ऐसही एक रूप मननशील मुनिका आत्मा ब्रह्म होता है हे गौतम ॥ १५ ॥

मंत्रः–हंततइदंप्रवक्ष्यामिगुह्यंब्रह्मसनातनम् ॥

यथाचमरणंप्राप्यआत्माभवतिगौतम ॥ ६ ॥

टीका–हंतेदानींपुनरपितेतुभ्यमिदंगुह्यंगोप्यंब्रह्मसनातनं चिरंतनं प्रवक्ष्यामि । यद्विज्ञानात्सर्वसंसारोपरमोभवति,अविज्ञानाच्चयस्य

मरणंप्राप्ययथात्माभवतियथासंसरतियथाशृणु हे गौतम ॥६॥

भाषा—हे गौतम सनातन गुप्त यह ब्रह्म तुमसे कहते हैं जिसको जान कर मरने से आत्मा ब्रह्म होता है ॥६॥

मंत्रः—यएषसुप्तेषुजागर्तिकामंकामंपुरुषोनिर्मिमाणः । तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाःश्रिताःसर्वेतदुनात्येति कश्चनएतद्वै तत् ॥ ८ ॥

टीका—यएषसुप्तेषुप्राणादिषुजागर्तिनस्वपिति कथम् । कामं कामंतंतमभिप्रेतंस्त्र्याद्यर्थमविद्ययानिर्मिमाणोनिष्पादयन्जागर्ति पुरुषोयस्तदेवशुक्रंशुभ्रंशुद्धंतद्ब्रह्मनान्यद्गुह्यंब्रह्मास्ति ॥ तदेवामृतमविनाश्युच्यते सर्वशास्त्रेषु । किञ्चपृथिव्यादयोलोकास्तस्मिन्नेवसर्वेब्रह्मण्याश्रिताःसर्वलोककारणत्वात्तस्यतदुनात्येति कश्चनेत्यादिपूर्ववदेव ॥ ८ ॥

भाषा—जो प्राणियों के सोने पर जागता है अविद्या से संसार को रचता है वही शुक्र है ब्रह्म है अमृत है तिसमें सब लोक स्थिति है उसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है वह ब्रह्म है ॥

टीका—अग्निर्यथैकएवप्रकाशात्मासन्भुवनंभवन्त्यस्मिन्भूतानीति भुवनमयंलोकस्तमिमंप्रविष्टोऽनुप्रविष्टः । रूपंरूपंप्रतिदार्वादिदाह्यभेदंप्रतीत्यर्थः ॥ प्रतिरूपस्तत्रतत्रप्रतिरूपवान्दाह्यभेदेनबहुविधोबभूव । एकएवतथासर्वभूतान्तरात्मासर्वेषांभूतानामभ्यन्तरआत्माऽतिसूक्ष्मत्वाद्दार्वादिष्विवसर्वदेहंप्रतिप्रविष्टत्वात्प्रतिरूपोबभूव बहिश्चस्वेनाविकृतेन (स्व) रूपेणाकाशवत् ॥ ६ ॥

भाषा—जैसे एक अग्नि भुवन मे प्रविष्ट रूप २ में अनेक

रूप होगया है। इसी भांति एक सर्व भूत अन्तरात्मा रूप २ में अनेक रूप बाहर से हैं ॥ ९ ॥

मंत्रः—वायुर्यथैकोभुवनंप्रविष्टोरूपंरूपंप्रतिरूपोवभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मारूपंरूपंप्रतिरूपोवहिश्च ॥ १० ॥

टीका—वायुर्यथैकइत्यादि। प्राणात्मनादेहेष्वनुप्रविष्टोरूपंरूपंप्रति रूपोवभूवेति त (वेत्यादिस) मानम् ॥ १० ॥

भाषा—जैसे एक वायु भुवन में प्रविष्ट रूप २ में प्रति रूप होगया है। इसी भांति एक सर्वान्तरात्मा रूप २ में प्रति रूप है ॥ १० ॥

मंत्रः—सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्नलिप्यतेचाक्षुषैर्वाह्यदोषैः॥ एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मानलिप्यतेलोकदुःखेनवाह्यः ॥११॥

टीका—सूर्योयथाचक्षुषआलोकेनोपकारंकुर्वन्मूत्रपुरीषाद्यशुचिप्र काशनेनतद्दर्शिनःसर्वलोकस्यचक्षुरपिसन्नलिप्यते चाक्षुषैरशुच्या दिदर्शननिमित्तैराध्यात्मिकैःपापदोषैर्वाह्यैश्चाशुच्यादिसंसर्गदोषैः एकःसंस्तथासर्वभूतान्तरात्मानलिप्यतेलोकदुःखेनवाह्यः॥ लोकोह्यविद्ययास्वात्मन्यध्यस्तयाकामकर्मोद्भवंदुःखमनुभवति ॥ नतुसापरमार्थतःस्वात्मनि। यथारज्जुशुक्तिकोखरगगनेषुसर्परज तोदककमलानिनरज्ज्वादीनांस्वतोदोषरूपाणिसन्ति । संसर्गि णिविपरीतबुद्ध्यध्यासनिमित्तात्तद्दोषवदविभाव्यन्ते। नतद्दोषैस्ते षांलेपोविपरीतबुद्ध्यध्यासवाह्याहिते। तथात्मनिसर्वोलोकःक्रिया कारककलात्मकंविज्ञानंसर्पादिस्थानीयं विपरीतमध्यस्यतन्निमित्तं जन्ममरणादिदुःखमनुभवति नत्वात्मासर्वलोकात्मोऽपिसन्विपरी ताध्यारोपनिमित्तेनलिप्यतेलोकदुःखेन। कुतः। वाह्यः ॥

रज्ज्वादिवदेवविपरीतवुद्ध्यध्यासवाह्योहिसइति ॥ ११ ॥

भाषा—जैसे एक सूर्य सब लोक का नेत्र है वाहरी नेत्र दोषों से नहीं छिपता है ऐसेही एक सर्वान्तरात्मा वाहरी लोक दुःख से नहीं लिप्त होता है ॥ ११ ॥

मंत्रः—एकोवशीसर्वभूतान्तरात्माएकंरूपंवहुधायःकरोति ॥
तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषांसुखंशाश्वतंनेतरेषाम् ॥

टीका—सहिपरमेश्वरःसर्वगतःस्वतंत्रएकोनतत्समोऽभ्यधिकोवाऽन्योस्ति । वशीसर्वह्यस्यजगद्वशेवर्त्तते । कुतः । सर्वभूतान्तरात्मा ॥ यतएकमेवसदेकरसमात्मानंविशुद्धविज्ञानरूपंनामरूपाद्यशुद्धोपाधिभेदवशेनवहुधाऽनेकवारंयःकरोतिस्वात्मसत्तामात्रेणाचिन्त्यशक्तित्वात् । तमात्मस्थंस्वशरीरहृदयाकाशेवुद्धौचैतन्याकारेणाभिव्यक्तमित्येतत् । नहिशरीरस्याऽऽधारत्वममात्मनः ॥ आकाशवदमूर्तत्वात् । आदर्शस्थंमुखमितियद्वत् । तमेतमीश्वरमात्मानंयेनिवृत्तवाह्यवृत्तयोऽनुपश्यन्ति आचार्यागमोपदेशमनुसाक्षादनुभवन्तिधीराविवेकिनस्तेषांपरमेश्वरभूतानांशाश्वतंनित्यंसुखमात्मानंदलक्षणंभवति नेतरेषांवाह्यासक्तवुद्धीनामविवेकिनां स्वात्मभूतमप्यविद्याव्यवधानात् ॥ १२ ॥

भाषा—एक स्ववश सर्वान्तरात्मा वहुत रूप होता है आत्मा में स्थित जो धीर उसे देखते हैं उन्हीं को नित्य सुख मिलता है औरों को नहीं ॥ १२ ॥

मंत्र—नित्योऽनित्यानांचेतनश्चेतनानामेकोवहूनांयोविदधाति कामान् ॥ तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषांशान्तिःशाश्वतीनेतरेषाम् ॥ १३ ॥

टीका–नित्योऽविनाश्यनित्यानांविनाशिनाम्॥ चेतनश्चेतना नांचेतयितॄणां ब्रह्मादीनांप्राणिनामग्निनिमित्तमिवदाहकमनग्नी नामुदकादीनामात्मचैतन्यनिमित्तमेवचेतयितृत्वमन्येषाम् ॥ किं चससर्वज्ञःसर्वेश्वरःकामिनांसंसारिणांकर्मानुरूपकामात्कर्मफलानि स्वानुग्रहनिमित्तांश्चकामान्यएकोवहूनामनेकेषामनायासेनविदधा ति प्रयच्छतीत्येतत् ॥ तमात्मस्थंयेनुपश्यन्ति, धीरास्तेषांशांति रूपरतिःशाश्वतीनित्या स्वात्मभूतैवस्यान्नेतरेषामनेवंविधानाम् ॥

भाषा–अनित्यों में नित्य चेतनों का चेतन वहुतों की कामना पूरण करता है आत्मा में स्थिति उस ब्रह्म को जो धीर देखते हैं उन्हीं को स्थिर शांति होती है औरों को नहीं ॥१३॥

मंत्र–नतत्रसूर्योभाति न चन्द्रतारकंनेमाविद्युतोभांतिकुतोऽय मग्निः ॥ तमेवभान्तमनुभातिसर्वतस्यभासासर्वमिदंविभाति ॥१५॥

टीका–नतत्रतस्मिन्स्वात्मभूतेब्रह्मणिसर्वावभासकोऽपिसूर्योभा तितद्ब्रह्मनप्रकाशयतीत्यर्थः ॥ तथा न, चन्द्रतारकंनेमाविद्युतो, भांतिकुतोयमस्मद्दृष्टिगोचरोऽग्निः ॥ किंवहुनायदिदमादिकं सर्वं भातितत्तमेवपरमेश्वरंभान्तंदीप्यमानमनुभात्यनुदीप्यते ॥ यथाजलोल्मुकाद्यग्निसंयोगादग्निंदहन्तमनुदहतिनस्वतस्तद्वत्॥ तस्यैवभासादीप्त्यासर्वमिदंसूर्यादिविभाति ॥ यतएवंतदेवब्रह्म भातिविभातिच ॥ कार्यगतेनविविधेनभासातस्यब्रह्मणोभारूप त्वंस्वतोऽवगम्यते ॥ नहिस्वतोऽविद्यमानंभासनमन्यस्यकर्तुं शक्यम् ॥ घटादीनामन्यावभासकत्वादर्शनाद्भासनरूपाणां चाऽऽदित्यादीनांतद्दर्शनात् ॥१५॥

भाषा–वहां सूर्य चन्द्र तारागण विजुली नहीं प्रकाश करती

है अग्नि कैसे उसी के प्रकाश से यह सब प्रकाशित है ।

मंत्रः—उर्ध्वमूलोऽवाक्शाखएषोऽश्वत्थःसनातनः तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाःश्रिताःसर्वेतदुनात्येतिकश्चन एतद्वै तत् ॥ १ ॥

टीका—ऊर्ध्वमूलऊर्ध्वंमूलंयत्तद्विष्णोःपरमंपदमस्येति सोऽयमव्यक्तादिस्थावरान्तःसंसारवृक्षःऊर्ध्वमूलः । वृक्षश्चव्रश्चनात् । जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकःप्रतिक्षणमन्यथास्वभावोमायामरीच्युदकगंधर्वनगरादिवत्दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसानेचवृक्षवदभावात्मकःकदलीस्तम्भवन्निःसारोऽनेकशतपाखण्डवुद्धिविकल्पास्पदस्तत्वविजिज्ञासुभिरनिर्धारितेदंतत्वोवेदांतनिर्धारितपरब्रह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्यक्तवीजप्रभवोऽपरब्रह्म विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिरण्यगर्भाङ्कुरः श्रुतिस्मृतिन्यायविद्योपदेशपलाशोयज्ञदानतपआद्यनेकक्रियासुपुष्पःसुखदुःखवेदनानेकरसः प्राण्युपजीव्यानन्तफलस्तत्तृष्णा सलिलावसेकप्ररूढजड़ीकृत दृढवद्धमूलःसत्यनामादिसप्तलोकब्रह्मादिभूतपक्षिकृतनीडःप्राणिसुखदुःखोद्भूतहर्षशोकजातनृत्यगीतवादित्रक्ष्वेलितास्फोटिनहसिता क्रुष्टरुदितहाहामुञ्चमुञ्चेत्याद्यनेकशब्दकृतनुमुलीभूतमहारवोवेदान्त विहितब्रह्मात्मदर्शनासंगशस्त्रकृतोच्छेदएषसंसारवृक्षोऽश्वस्थोऽश्वत्थवत्कामकर्मवातेरितनित्यप्रचलितस्वभावः ॥ स्वर्गनर्कतिर्यक्प्रेतादिभिःशापाभिरवाक्शाखः ॥ सनातनोऽनादित्वाच्चिरंप्रवृत्तः यदस्यसंसारवृक्षस्यमूलंतदेवशुक्रंशुभ्रं शुद्धंज्योतिषमच्चैतन्यात्मज्योतिःस्वभावंतदेवब्रह्मसर्वमहत्त्वात् ॥ तदेवामृतमविनाशस्वभावमुच्यतेकथ्यतेसत्यत्वात् ॥ वाचारम्भणंविकारोनामधेयमनृत

मन्यदतोमर्त्त्यम् ॥ तस्मिन्परमार्थसत्येब्रह्मणिलोकागंधर्वनगर मरीच्युदकमायासमाःपरमार्थदर्शनाभावावगममनाःश्रिताश्रि ताः सर्वेसमस्ताउत्पत्तिस्थितिलयेपुतदुतब्रह्मनात्येतिनातिवर्ततेमृ दादिमिवघटादिकार्यंकश्चनकश्चिदपिविकारः ॥ एतद्वै तत् ॥१॥

भाषा—ऊपर को मूल नीचे को शाखा यह अश्वत्थ सनातन है वही शुक्र वही ब्रह्म वही अमृत है उसी में लोक स्थित है उसे कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है वह ब्रह्म है।

मंत्र—यदापञ्चावतिष्ठंतेज्ञानानिमनसासह ॥ बुद्धिश्चनविचेष्ट ति तामाहुःपरमांगतिम् ॥१०॥

मंत्र—यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामायेऽस्यहृदिस्थिताः ॥ अथमर्त्योऽमृ तोभवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते ॥१४॥

भाषा—जब पंचज्ञानेंद्री मन सहित स्थिर होजाती हैं बुद्धि नहीं चंचल होती है उसी को परम गति कहते हैं, जब हृदय में स्थित सब कामना छूट जाती हैं तब मनुष्य मुक्त होकर ब्रह्मा नंदपाता है॥

मंत्र—एषोऽग्निस्तपत्येषसूर्य्यएषपर्जन्योमघवाऐषवायुरेषपृथवीरयि देवःसदसच्चामृतञ्चयत् ॥५॥ इति प्र० द्वि० ५ मंत्र

एषहिद्रष्टास्प्रष्टाश्रोताघ्रातारसयितामन्ताबोद्धाकर्त्ता विज्ञाना त्मापुरुषः॥सपरेऽक्षरेआत्मनिसम्प्रतिष्टते ।६।इति॰प्र॰द्वि॰५मंत्र

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यःप्रयुक्ताअन्योन्यसक्ताअनविप्रयुक्ता ॥ क्रि यासुबाह्याभ्यन्तरमध्यमासुसम्यक् प्रयुक्तासुनकम्पतेज्ञः ॥६॥ ऋग्भिरेतंयजुभिरंतरिक्षंससामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते ॥ तमोङ्कारे णेवायतनेनान्वेतिविद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयंपरञ्चेति॥५॥

भाषा-यह अग्नि होकर तपता है यह सूर्य है यह मेघ है यह इन्द्र है यह वायु है पृथवी है सत् असत् अमृत जो कुछ है यही है ॥५॥

यही द्रष्टा छूने वाला श्रोता सूंघनेवाला स्वाद लेनेवाला मानने वाला बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष है, पर अक्षर रूप आत्मा में प्रतिष्ठित है ॥६॥

तीनों मात्रा नाशमान हैं अन्योन्य संमिलित हैं पृथक् नहीं वह ब्रह्म बाहर भीतर मध्य क्रियायों में ज्ञानस्वरूपकंपित नहीं होता है ॥ ६ ॥

ऋग० यजु० सामवेद की ऋचाओं से कवि जन उसको जानते हैं उसको ॐकार में ही युक्त करते हैं शांत अजर अमृत अभय पर वह है ॥

मंत्र–सयथेमानद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रायणाःसमुद्रंप्राप्यास्तंगच्छंतिभिद्येतेतासांनामरूपेसमुद्रइत्येवंप्रोच्यते ॥ एवमेवास्यपरिद्रष्टुरिमाःषोड़शकलाःपुरुषायणाःपुरुषंप्राप्यास्तंगच्छन्तिभिद्येतेचाऽऽसांनामरूपेपुरुषइत्येवंप्रोच्यतेसएषोऽकलोऽमृतोभवतितदेष ॥५॥

मंत्र- अपराइवरथनाभौकलायस्मिन्प्रतिष्ठता ॥ तंवेद्यंपुरुषंवेदयथामावोमृत्युःपरिव्यथाइति ॥६॥

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेद ॥ नातःपरमस्तीति ॥७॥

भावार्थ–तानेवमनुशिष्यशिष्यांस्तान्होवाचपिप्पलादःकिलैतावदेववेद्यंपरंब्रह्मवेदविजानाम्यहमेतत् ॥ नातोऽस्मात्परमस्तिप्रकृष्टतरंवेदितव्यमित्येवमुक्तवाञ्शिष्याणामविदितशेषास्तित्वाशङ्कानिवृत्तयेकृतार्थबुद्धिजननार्थंच ॥७॥ शिष्याणांकृतार्थबुद्धिजनं

नार्थतानित्यादिवाक्यंव्याचष्टे तानेवमिति ॥७॥
भाषा—जैसे ये नदी समुद्र की ओर वहती हुई समुद्र में पहुंच कर अस्त हो जाती हैं उनका नाम रूप कुछ नहीं रहता है समुद्र कहा जाता है इसी तरह आत्मा की ऊपरी सोलह कला पुरुष को प्राप्त होती हुई पुरुष को प्राप्त होकर अस्त होजाती हैं उनके नाम रूप नहीं रहते हैं पुरुष ब्रह्म कहा जाता है अकल अमृत वही है ॥ ५ ॥

रथ नाभि में जैसे अरास्थित हैं इसी भांति उस वेद्य पुरुष को जानो तुम्हें मृत्यु नहीं मारे उनको समझाया है हमही यह परब्रह्म को जानते हैं इस ब्रह्म से श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥७॥

मंत्रः—तस्मादृचःसामयंजूंषिदीक्षायज्ञाश्चसर्वेक्रतवोदक्षिणाश्च ॥
संवत्सरश्चयजमानश्चलोकाःसोमोयत्रपवतेयत्रसूर्यः ॥६॥

टीका—तस्मादृचःगायत्र्यादिच्छन्दोविशिष्टामंत्राः । सामपांच भक्तिकंसाप्तभक्तिकंचस्तोमादिगीतविशिष्टम् । यजूंष्यनियता क्षरपादावसानानिवाक्यरूपाण्येवत्रिविधामंत्राः।दीक्षामौंज्यादि। यज्ञाश्चसर्वेऽग्निहोत्रादयः । क्रतवःसयूपाः । संवत्सरश्चकालःक र्माङ्गः । यजमानःकर्तालोकास्तस्यफलभूताःसोमोयत्रयेपुलोके पुपुनाति ॥ लोकान्यत्रसूर्यस्तपतिचतेचविद्वदविद्वत्कर्तृफल भूताः ॥ ६ ॥

भाषा—तिस ब्रह्म से ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद दीक्षायज्ञ ऋतु दक्षिणा, संवत्सर यजमान लोक सोम होते हैं जहां सूर्य हैं ॥ ६ ॥

मंत्रः—तस्माच्चदेवावहुधासंप्रसूताःसाध्यामनुष्यापशवोवयांसि ॥
प्राणापानोव्रीहियवौतपश्चश्रद्धासत्यंब्रह्मचर्यंविधिश्च ॥ ७ ॥

टीका-तस्माचकर्माङ्गमंभूतादेवाः। साध्यादेवविशेषाः ॥ मनुष्या कर्माधिकृता ॥ पशवोग्रामारण्याः ॥ वयांसिपक्षिणः ॥ प्राणापानौ जीवनं च मनुष्यादीनाम् ॥ व्रीहियवौहविरर्थौ ॥ तपश्चकर्माङ्गं॥ श्रद्धासर्व पुरुपार्थसाधनप्रयोगिश्चित्तप्रसादआस्तिक्यवुद्धिः ॥ सत्यमनृतवचनं ॥ ब्रह्मचर्यमैथुनासमाचारः ॥ विधिश्चेति कर्तव्यता ॥७॥

भापा-तिस ब्रह्म से बहुत प्रकार के देवता साध्यगण मनुष्य पशु पक्षी प्राण अपान चांवल यव तप श्रद्धा ब्रह्मचर्य विधि सब पैदा हुए हैं

मंत्र-सप्तप्राणाःप्रभवंतितस्मात्सप्तार्चिपःसमिधःसप्तहोमाःसप्तइमेलोकायेपुचरंतिप्राणागुहाशयानिहितासप्तसप्त ॥८॥

टीका-किंचसप्तशीर्षण्याःप्राणास्तस्मादेवपुरुपात्प्रभवन्ति ॥ तेपांसप्तार्चिपःसप्तदीप्तयः ॥ सप्तसमधिः सप्तविपयाःसप्तहोमास्तद्विपयविज्ञानानि यदस्यविज्ञानंतज्जुहोतिकिंचसप्तेमेलोका इन्द्रियस्थानानियेपुचरन्तिसंचरन्तिप्राणाः। गुहायांशरीरेहृदयेवा स्वापकाले शेरते इति गुहाशयाः ॥८॥

भाषा-तिस ब्रह्म से सप्तप्राण होते हैं तिनके सात दीप्ति सात विषय सात उन विपयों के विज्ञान सात लोक इन्द्रियों के स्थान जहां प्राण विचरते हैं शयन काल में हृदय में सोते हैं। ८

मंत्र-अतःसमुद्रागिरयश्चसर्वेऽस्मात्स्यन्दन्तेसिन्धवःसर्वरूपाः। अतश्चसर्वाओपधयोरसश्चयेनेपभूतैस्तिष्टतेह्यन्तरात्मा ॥९॥

टीका-अतःपुरुपात्समुद्रासर्वेक्षाराद्याः ॥ गिरयश्चहिमवदादयो ऽस्मादेवपुरुपात्सर्वे ॥ स्यन्दन्तेस्रवन्तिगङ्गाद्याःसिन्धवोनद्यःसर्व

रूपाबहुरूपाः ॥ अस्मादेवपुरुषात्सर्वाओषधयोव्रीहियवाद्याः ॥ रसश्चमधुरादिःषट्विधोयेनरसेनभूतैःपञ्चभिःस्थूलैःपरिवेष्टितस्ति ष्ठतेतिष्ठतिह्यन्तरात्मा लिङ्गसूक्ष्मशरीरम् ॥ तद्ध्यन्तरालेशरीरस्या ऽऽत्मनश्चाऽऽत्मवद्वर्ततइत्यन्तरात्मा ॥६॥

भाषा–इस ब्रह्म से समुद्र पर्वत नदी बहुत रूप से उत्पन्नहोते हैं इस ब्रह्म से औषधी रस जिन से अन्तरात्मा की स्थित हे होते हैं

मंत्र–पुरुषएवेदंविश्वंकर्मतपोब्रह्मपरामृतम् ॥ एतद्योवेदनिहितंगु हायांसोऽविद्याग्रन्थिंविकिरतीहसौम्य ॥१०॥

टीका–एवंपुरुषात्सर्वमिदंसंप्रसूतम् ॥ अतोवाचारम्भणंविकारोना मधेयमनृतंपुरुषइत्येवसत्यम् ॥ अतःपुरुषएवेदंविश्वंसर्वम् ॥ न विश्वंनामपुरुषादन्यत्किंचदस्ति ॥ अतोयदुक्तं तदेतदभिहितं कस्मिन्नुभगवोविज्ञातेसर्वमिदंविज्ञातंभवतीति ॥ एतस्मिन्हिपरस्मि न्नात्मनिसर्वकारणेपुरुषएवेदंविश्वंनान्यदस्तीतिविज्ञातंभवतीति किंपुनरिदंविश्वमित्युच्यते ॥ कर्माग्निहोत्रादिलक्षणम् ॥ तपोज्ञा नंतत्कृतंफलमन्यदेतावद्धीदंसर्वं ॥ तच्चैतद्ब्रह्मणःकार्यंतस्मात्स र्वंब्रह्मपरामृतंपरममृतमहमेवेतियोवेदनिहितंस्थितंगुहायां हृदिसर्व प्राणिनांसएवंविज्ञानादविद्याग्रन्थिंग्रन्थिमिवदृढीभूतामविद्या वास नांविकिरतिविक्षिपतिनाशयतीहजीवन्नेवनमृतः सन्हेसौम्यप्रिय दर्शन ॥१०॥ इत्यथर्ववेदीयमुण्डकोनिषद्भाष्येद्वितीयेप्रथमखण्डे मंत्रा ॥

भाषा–यह संसार ब्रह्म से उत्पन्न है इससे ब्रह्म ही है तपकर्म का फल यही ब्रह्म है इस ब्रह्म को जो अपने में स्थित जानता है वह अविधा ग्रंथि को खोल देता है हे सौम्य ।

मंत्र—धनुर्गृहीत्वौपनिषदंमहास्त्रंशरंह्युपासानिशितंसंधयीत ॥ आयम्य भावगतेनचेतसालक्ष्यंतदेवाक्षरंसौम्यविद्धि ॥३॥

टीका—कथंवेद्धव्यमित्युच्यते धनुरिष्वासनंगृहीत्वाऽऽदायौपनिषद मुपनिषत्सु भवंप्रसिद्धं महास्त्रं महच्चतदस्त्रं चमहास्त्रं धनुस्तस्मिञ्शरम् किंविशिष्टमित्याह ॥ उपासानिशितंसंततामिध्यानेनतनूकृतंसं स्कृतमित्येतत् ॥ संधयीतसंधानंकुर्यात् ॥ संधाय चाऽऽयम्याऽऽ कृष्यसेन्द्रियमन्तःकरणंस्वविषयाद्विनिवर्त्यलक्ष्य एवाऽऽवर्जितंकृ त्वेत्यर्थः ॥ नहिहस्तेनेवधनुष आयमनमिहसंभवति ॥ तद्भावग तेनतस्मिन्ब्रह्मण्यक्षरेलक्ष्येभावनाभावस्तद्गतेनचेतसालक्ष्यं सदेव यथोक्तलक्षणमक्षरंसौम्यविद्धि ॥३॥

भाषा—उपनिषद रूप धनुष लेकर महास्त्र शर लगाकर उपासना से संधान करे इन्द्रियों को जीतना यह आकर्षण करै उस अक्षर ब्रह्म में भावना से वेधन करै हे सौम्य

मंत्र—प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेनवेद्ध व्यंशरवत्तन्मयो भवेत् ॥४॥

टीका—यदुक्तं धनुरादितदुच्यते प्रणवॐकारोधनुः ॥ यथेष्वासनं लक्ष्येशरस्यप्रवेशकारणंतथाऽऽत्मशरस्याक्षरेलक्ष्येप्रवेशकारणमों कारःप्रणवेनह्यभ्यस्यमानेनसंस्क्रियमाणस्तदालम्बनोऽप्रति बन्धे नाक्षरेऽवतिष्ठतेयथाधनुषाऽऽस्तइषुर्लक्ष्ये ॥ अतःप्रणवोधनुरिषध नुःशरोह्यात्मोपाधिलक्षणः, परएवजलेसूर्यादिवदिहप्रविष्टोदेहेसर्व बौद्धप्रत्ययसाक्षितयासशरइवस्वात्मन्येवार्पितोऽक्षरेब्रह्मण्यतोब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यतेलक्ष्यइवमनः समाधित्सुभिरात्मभावेनलक्ष्यमाण त्वात् ॥ तत्रैवंसत्यप्रमत्तेनबाह्यविषयोपलब्धितृष्णाप्रमोदवर्जिते

नसर्वतोविरक्तेनजितेंद्रियेणैकाग्रचित्तेनवेद्धव्यंब्रह्मलक्ष्यंततस्तद्वे धनादूर्ध्वंशरवत्तन्मयोभवेत् ॥ यथाशरस्यलक्ष्यैकात्मत्वंफलमापा दयेदित्यर्थः ॥४॥

भाषा—ओंकार धनुष है बाण आत्मा है ब्रह्म निशाना है सावधान होकर वेधन करे बाण की भांति तन्मय होजावे।

मंत्र—यस्मिन्द्यौःपृथ्वीचान्तरिक्षमोतंमनःसहप्राणैश्चसर्वैः ॥ तमे वैकंजानथआत्मानमन्यावाचोविमुञ्चथामृतस्यैषसेतुः ॥५॥

टीका—अक्षरस्यैवदुर्लक्ष्यत्वात्पुनःपुनर्वचनंसुलक्षणार्थम् । यस्मि न्नक्षरेपुरुषेद्यौःपृथवीचान्तरिक्षंचोतंसमर्पितंमनश्चसहप्राणैःकरणै रन्यैःसर्वैस्तमेवसर्वाश्रयमेकमद्वितीयंजानथजानीथहेशिष्याः ॥ आत्मानंप्रत्यक्स्वरूपंयुष्माकंसर्वप्राणिनांच ज्ञात्वाचान्यावाचोऽप रविद्यारूपाविमुञ्चथविमुञ्चतपरित्यजत । तत्प्रकाश्यंचसर्वकर्मस साधनम् । यतोऽमृतस्यैवसेतरेतदात्मज्ञानममृतस्यामृतत्वस्यमोक्ष स्यप्राप्तये सेतुरिवसेतुःसंसारमहोदधेरुत्तरणहेतुत्वात्तथाचश्रुत्यन्त रम् । तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाय ॥५॥

भाषा—जिस ब्रह्म में आकाश पृथ्वी अतरिक्ष सब प्राणों सहित मन पोहा है उस आत्मा को जानो और सब बातें छोड़ो यह मुक्ति का सेतु है।

मन्त्रः—अराइवनाभौसंहतायत्रनाड्यःस एषोऽन्तश्चरतेबहुधाजा यमानः ॥ ॐ मित्येवंध्यायथआत्मानंस्वस्तिवःपरयतमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

टीका—किंच ॥ अराइव । यथारथनाभौसमर्पिताअराएवंसंहताःसं प्रविष्टायत्रयस्मिन्हृदयेसर्वतोदेहव्यापिन्योनाड्यस्तस्मिन्हृदयेबुद्धि

प्रत्ययसाक्षिभूतःसएपप्रकृतआत्माऽन्तर्मध्येचरतेचरतिवर्त्तते॥ पश्यंशृण्वन्मन्वानोविजानन्बहुधाऽनेकधा क्रोधहर्षादिप्रत्ययैर्जायमानइवजायमानोऽन्तकरणोपाध्यनुविधायित्वा द्वदंतिलौकिका हृष्टोजातःक्रुद्धोजातइति ।. तमात्मानमोमित्येवमोंकारालम्बनाःसन्तो यथोक्तकल्पनयाध्यायथचिन्तयत । उक्तंवक्तव्यंत्रशिष्येभ्यआचार्येणजानता । शिष्याश्चब्रह्मविद्याविविदिषुत्वान्निवृत्तकर्माणोमोक्षपथेप्रवृत्ताः । तेषांनिर्विघ्नतयाब्रह्मप्राप्तिमोशास्त्याचार्यः । स्वस्तिनिर्विघ्नमस्तुवोयुष्माकंपरायपरकूलाय । परस्तात्कस्मादविद्यातमसः । अविद्यारहितब्रह्मात्मस्वरूपगमनायेत्यर्थः ॥ ६ ॥

भाषा—रथ नाभि में आरा की तरह सब नाड़ी जहां पर हैं वह भीतर है अनेक रूप से जायमान ॐकार ही आत्मा को ध्यान करो अन्धकार से पार हो स्वस्ति प्राप्त होवोगे ।

मंत्रः—भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ।
क्षीयन्तेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ ८ ॥

टीका—अस्यपरमात्मज्ञानस्यफलमिदमभिधीयते । भिद्यतेहृदयग्रन्थिरविद्यावासनाप्रचयोबुद्ध्याश्रयःकामः कामायेऽस्यहृदिस्थिताः । 'इतिश्रुत्यन्तरात्' । हृदयाश्रयोऽसौनात्माश्रयः ॥ भिद्यतेभेदंविनाशमायाति । छिद्यन्तेसर्वज्ञेयविषयासंशया लौकिकानामामरणात्तुगङ्गास्रोतोवत्प्रवृत्ताविच्छेदमायान्ति । अस्यविच्छिन्नसंशयस्यनिवृत्ताविद्यस्ययानिविज्ञानोत्पत्तेःप्राक्तनानिजन्मान्तरेचाप्रवृत्तफलानिज्ञानोत्पत्तिसहभावीनिचक्षीयन्तेकर्माणि । नत्वेतज्जन्मारम्भकाणिप्रवृत्तफलत्वात्तस्मिन्सर्वज्ञेऽसंसारिणिपरावरेपरंचका

रणात्मनाऽवरंचकार्यात्मनातस्मिन्परावरेसाक्षाद्दमस्मीतिदृष्टेसंसा रकारणोच्छेदान्मुच्यतइत्यर्थः ॥ ८ ॥

भाषा–हृदय की ग्रंथि भेदन हो जाती है सब संदेह कट जाते हैं इस जीव के सब कर्म क्षीण होजाते हैं जब पर अवर रूप परमात्मा दृष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

मंत्रः–नतत्रसूर्योभातिनचन्द्रतारकंनेमाविद्युतोभांतिकुतोयम ग्निः॥ तमेवभान्तमनुभातिसर्वतस्यभासासर्वमिदविभाति ॥१०॥

मंत्रः–ब्रह्मैवेदममृतंपुरस्ताद्ब्रह्मपश्चाद्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वंचप्रसृतंब्रह्मैवेदंविश्वमिदंवरिष्ठम् ॥११॥

टीका–यत्तज्ज्योतिषांज्योतिर्ब्रह्मतदेवसत्यंसर्वंतद्विकारंवाचारम्भणं अग्रे पृष्ठतश्चदक्षिणतश्चोतरेणह्यधस्तादूर्ध्वंसर्वतोऽन्यदिव । किंब हुनाब्रह्मैवेदंविश्वंवरिष्ठमवरतमम् ॥ इति द्वि० मुण्डके द्वि० खण्डः ॥

भाषा–तहां पर सूर्य चन्द्रमा तारागण नहीं प्रकाश करते ये विजुली भी नहीं प्रकाश करती हैं यह अग्नि कहां प्रकाश कर सकते हैं। उसी को प्रकाश होते हुए सब प्रकाशते हैं उसके तेज से यह सब जगत प्रकाशित है ॥१०॥

आगे यह अमृत ब्रह्म है पीछे ब्रह्म है दक्षिण उत्तर ऊपर नीचे ब्रह्म ही का प्रसार है यह सर्व विश्व ब्रह्म ही है ॥११॥

मंत्रः–यदापश्यःपश्यतेरुक्मवर्णंकर्तारमीशंपुरुषंब्रह्मयोनिम् ॥
तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरञ्जनःपरमंसाम्यमुपैति ॥ ३

टीका–अन्योऽपिमंत्रःइममेवार्थमाहसविस्तरम् । यदायस्मिन्काले पश्यःपश्यतीतिविद्वान्साधकइत्यर्थः । पश्यतेपश्यतिपूर्ववद्रुक्म

वर्णंस्वयंज्योतिःस्वभावंरुक्मस्येववाज्योतिरस्या विनाशिकर्तारंस र्वस्यजगतईशंपुरुषंब्रह्मयोनिंब्रह्मचतद्योनिश्चासौब्रह्मयोनिस्तंब्रह्म योनिब्रह्मणोवाऽपरस्ययोनिंसयदाचैवंपश्यतितदासविद्वान्पश्यः पुण्यपापेबन्धनभूतेकर्मणीसमूलेविधूयनिरस्यदग्ध्वानिरञ्जनोनि र्लेपोविगतक्लेशःपरमंप्रकृष्ट निरतिशयंसाम्यंसमतामद्वयलक्षणंद्वै तविषयाणिसामान्यतोऽर्वाञ्च्येवासोऽद्वयलक्षणमेतत्परमंसाम्यमु पैतिप्रतिपद्यते ॥

भाषा–जब द्रष्टा दिव्यवर्ण कर्ता ईश्वर पुरुष सबकी उत्पत्ति स्थान ब्रह्म योनि को देखता है तब विद्वान पुण्य पाप धोकर निरञ्जन परम शांति को पैदा है ॥ ३ ॥ इति तृतीय मुंडके प्रथम खंड मन्त्रः ॥

मंत्रः—वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाःसंन्यासयोगायतयःशुद्धसत्वाः तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे ॥ ६ ॥

टीका–किंचवेदान्तजनितविज्ञानंतस्यार्थःपरमात्माविज्ञयःसोऽर्थः सुनिश्चितोयेषांतेवेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः।तेचसन्यासयोगा त्सर्वकर्मपरित्यागलक्षणयोगात्केवलब्रह्मनिष्ठा स्वरूपाद्योगाद्यत योयतनशीलाः शुद्धसत्वाशुद्धसत्वंयेषांसंन्यासयोगात्तेशुद्धस त्वाः। तेब्रह्मलोकेषु।संसारिणांयेमरणकालास्तेपरान्तास्तानपेक्ष्य मुमुक्षूणांसंसारावसानेदेहपरित्यागकालःपरान्तकालतस्मिन्परा न्तकालेसाधकानांबहुत्वाद्ब्रह्मैवलोकोब्रह्मलोक एकोऽप्यनेकवत् दृश्यतेप्राप्यतेवा। अतोबहुवचनंब्रह्मलोकेष्वितिब्रह्मणीत्यर्थः ॥ परामृता परममृतममरणधर्मकंब्रह्माऽऽत्मभूतंयेषांतेपरामृताजीवन्त एवब्रह्मभूताःपरामृताःसन्तःपरिमुच्यन्तिपरिसमन्तात्प्रदीपनिर्वा

एवद्भिन्नघटाकाशवनिवृत्तिमुपयान्ति ॥ परिमुच्यन्तिपरिसम
:न्तान्मुच्यतेसर्वेनदेशान्तरंगंतव्यमपेक्षन्ते ॥

श्लो०–शकुनीनामिवाऽऽकाशेजलेवारिचरस्यच ॥
पदंयथानदृश्येततथाज्ञानवतांगतिः ॥

अर्थः–अनध्वगाअध्वसुपारयिष्णवः इतिश्रुतिस्मृतिभ्यांदेश परिच्छिन्नाहिगतिःसंसारविषयैव । परिच्छिन्नसाधनसाध्यत्वात् । ब्रह्मतुसमस्तत्वान्नदेशपरिच्छेदेनमन्तव्यम् । यदिहिदेशपरिच्छिन्नं ब्रह्मस्यान्मूर्तद्रव्यवदाद्यन्तवदन्याश्रितंसावयव मनित्यंकृतकंच स्यात् । नत्वेवंविधंब्रह्मभवितुमर्हति । अतस्तत्प्राप्तिश्चनैवदेश परिच्छिन्नाभवितुंयुक्ता । अपिचाविद्यादिसंसारबन्धापनयनमेवमो क्षमिच्छन्तिब्रह्मविदोनतुकार्यभूतम् ॥ ६ ॥

वेदान्त विज्ञान से निश्चित अर्थ वाले सन्यासयोगी यती शुद्ध अंतः करण हैं जिनका वही ब्रह्म लोक में प्राप्त होते हैं परांत काल में मुक्त होते हैं सर्व व्यापी ब्रह्म का कोई लोक नहीं है निःशेष हो जाते हैं ॥६॥

मंत्रः–गताःकलाःपञ्चदशप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु । कर्मा *णिविज्ञानमयश्चआत्मापरेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति ॥७॥*

टीका–किंचमोक्षकालेयादेहारम्भिकाःकलाःप्राणाद्यास्ताःस्वांस्वांप्र तिष्ठांगताःस्वंस्वंकारणंगताभवन्तीत्यर्थः । प्रतिष्ठाइतिद्वितीया बहुवचनं । पञ्चदशपञ्चदशसंख्याकायाअन्त्यप्रश्नपरिपठिताःप्रसि द्धादेवाश्चदेहाश्रयाश्चक्षुरादिकरणस्थाःसर्वेप्रतिदेवतास्वादित्यादि षुगताभवन्तीत्यर्थः । यानिमुमुक्षणाकृतानिकर्माण्यप्रवृत्तफलानि प्रवृत्तफलानामुपभोगेनैवक्षीयमाणत्वाद्विज्ञानमयश्चाऽऽत्माऽविद्या

कृतवुद्ध्याद्युपाधिमात्मत्वेनमत्त्वाजलादिपुसूर्यादिप्रतिबिम्बवदि हप्रविष्टोदेहभेदेपुकर्मणांतत्फलार्थत्वात्सहतेनैवविज्ञानमयेनाऽऽत्मना । अतोविज्ञानमयोविज्ञानप्रायतएतेकर्माणिविज्ञानमयश्चाऽऽत्मोपाध्यपनयेसतिपरेऽव्ययेऽनन्तेऽक्षयेब्रह्मण्याकाशकल्पेऽजेऽजरेऽमृतेऽमयेऽपूर्वेऽनपरेऽनन्तरेऽबाह्मेऽद्वयेशिवेशान्ते सर्वएकीभवंत्यविशेपतांगच्छन्त्येवात्वमापद्यन्तेजलाद्याधारापनयइवसूर्यादिप्रतिविम्बाःसूर्येघटाद्यपनयइवाऽऽकाशेघटाद्याकाशाः ॥ ७ ॥

भाषा—गत पंचदशकलासवदेवताप्रतिदेवतो कर्म विज्ञानमय आत्मा ये सव पर अव्यय ब्रह्म में एक रूप होजाते हैं ॥ ७ ॥

इति श्री विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे श्रीब्रह्मनिरूपणे ईशावास्यादि मुण्डकोपनिपत् नाम अष्टमोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

माडूक्योपनिपदिब्रह्मात्मनिरूपणमंत्राः

मंत्रः—हरिः ॐ। मित्येतदक्षरमिदँ सर्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भविष्यदिति सर्वमोंकारएव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योंकार एव ॥

भाषा—ॐ यह अक्षर सव है उसका व्याख्यान करते हैं भूत वर्तमान भविश्य सव ॐकार है। जो त्रिकाल से बाहर है वह भी ॐकार ही है ॥ १ ॥

मंत्रः—सर्वँ ह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्मसोऽयमात्माचतुष्पात् ॥ २ ॥

भाषा—सव यह विश्व ब्रह्म है यह आत्मा ब्रह्म है वह आत्मा

चार चरण वाला है ॥ २ ॥

मंत्रः—जागरितस्थानोवहिष्प्रज्ञःसप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखःस्थूल भुग्वैश्वानरःप्रथमःपादः ॥ ३ ॥

भाषा—जागृत अवस्था स्थान बाहर विषयों का ज्ञान सात अङ्ग २१ मुख अर्थात् ज्ञान कर्मेन्द्री प्राण विषय आदि स्थूल भोक्ता वैश्वानर पहिला पाद है ३

मंत्रः—स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञःसप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखःप्रविविक्त भुक्तैजसोद्वितीयपादः ॥२॥

भाषा—स्वप्न स्थान अन्तर विषय ज्ञान सात अंग २१ मुख अन्तर भोक्ता तैजस द्वितीय पाद है ॥ ४ ॥

मंत्रः—यत्रसुप्तोनकंचनकामंकामयतेनकंचनस्वप्नंपश्यतितत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थानएकीभूतःप्रज्ञानघनएवाऽऽनन्दमयोह्यानन्दभुक् चेतोमुखःप्राज्ञस्तृतीयःपादः ॥ ५ ॥

भाषा—जहाँ सोया हुआ कुछ कामना नहीं करता है कुछ स्वप्न नहीं देखता है वह सुषुप्त स्थान है एकी भूत होकर प्रज्ञानेत्र आनन्दमय आनंद भोक्ता चैतन्य मुख प्राज्ञ नाम तृतीय पाद है ॥

मंत्रः—नान्तःप्रज्ञंनवहिष्प्रज्ञंनोभयतःप्रज्ञंनप्रज्ञानघनंनप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारंप्रपञ्चोपशमंशान्तंशिवमद्वैतंचतुर्थं मन्यन्ते सआत्मासविज्ञेयः ॥ ७ ॥

भाषा—अन्तर बोध नहीं बाहिरी नहीं दोतरफा भीतरी प्रज्ञान नहीं प्रज्ञान घन न प्रज्ञ नहीं अप्रज्ञ

में नहीं व्यवहार में नहीं कुछ लक्षण नहीं चिंतवन से रहित कोई उद्देश्य नहीं एकात्मा प्रत्ययसार सब प्रपंच शांत है जिसको शांत शिव अद्वैत चतुर्थ पाद मानते हैं वह आत्मा है॥७

मंत्रः—निवृत्तेसर्वदुःखानामीशानःप्रभुरव्ययः। अद्वैतःसर्वभावानां देवस्तुर्योविभुःस्मृतः ॥१॥

सब दुःख निवृत्त हो जाने पर ईशान प्रभु अव्यय अद्वैत सब भावों का चौथा देव विभु माना गया है ॥१०॥

मंत्रः—कार्यकारणबद्धौताविष्येतेविश्वतैजसौ। प्राज्ञःकारणबद्ध स्तुद्वौतौतुर्येनसिध्यतः ॥११॥

विश्व तैजस ये दोनो कार्य कारण से सम्बन्धित हैं प्राज्ञ कारण से बद्ध है पहले के दोनों चौथे में संभावना नहीं है

मंत्रः—नात्मानंनपरांश्चैवनसत्यंनोऽपिचानृतम्। प्राज्ञःकिंचनसंवेत्ति तुर्यंतत्सर्वदृक्सदा ॥१२॥

भाषा—न आत्म को नहीं पर को न सत्य न झूंठ कुछ भी प्राज्ञ जानता है तुरीय में प्राप्त सर्वद्रष्टा है १२

मंत्रः—द्वैतस्याग्रहणंतुल्यमुभयोःप्राज्ञतुर्ययोः। बीजनिद्रायुतःप्रा ज्ञःसाचतुर्येनविद्यते ॥१३॥

भाषा—प्राज्ञ सुषुप्त अवस्था और तुरीय आत्म रूप में द्वैत का ग्रहण नहीं है। परन्तु प्राज्ञ सुषुप्त अवस्था बीज रूप निद्रा युक्त है यह बीज रूप निद्रा अवस्था तुर्य आत्मा शुद्ध में नहीं है॥ १३ ॥

मंत्रः—स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौप्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥
ननिद्रांनैवचस्वप्नंतुर्येपश्यंतिनिश्चिताः ॥ १४ ॥

भाषा–विश्वतैजस ये दोनों स्वप्न और निद्रा युक्त हे प्राज्ञ अवस्था स्वप्न रहित केवल निद्रा युक्त है तुर्य चौथी अवस्था आत्मामें निद्रा और स्वप्न दोनो ज्ञानी जन नहीं देखते हैं।

मंत्रः–अन्यथागृह्णतःस्वप्नोनिद्रातत्वमजानतः ॥
विपर्यासेतयोक्षीणेतुरीयंपदमश्नुते ॥ १५ ॥

भाषा–स्वप्न जाग्रत अन्यथा रस्सी में सर्प की तरह ग्रहण करनेवाले को स्वप्न होता है निद्रा तत्व को न जाननेवाले के तीनों अवस्था में तुल्य स्वप्न निद्रा तुल्यता से विश्व तैजसकी एक राशि है अन्यथा ग्रहण प्राधान्य से गुण भूत निद्रा है उससे विपरीतस्वप्न तीसरे स्थान में तत्व के अज्ञान लक्षण वाला विपरीतपन केवल निद्रा ही है इससे दोनों के क्षीण होने पर तुरीयपद आत्मा प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मंत्रः--अनादिमायपासुप्तोयदाजीवःप्रबुध्यते ॥
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतंबुध्यतेतदा ॥ १६ ॥

भाषा–अनादि माया से सोया हुआ जीव जब जागता है तब निद्रा स्वप्न से रहित अज अद्वैत आत्मा को जानता है ॥१६

मंत्रः--सोयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रंपादामात्राश्चपादाअकारउकारमकार इति ॥ ८ ॥

भाषा–वह यह आत्मा अध्यक्षर है ॐकार अधिमात्र पाद और मात्रा अकार उकार मकार हैं ॥ ८ ॥

मंत्रः–अकारोनयतेविश्वमुकारश्चापितैजसम् ॥
मकारश्चपुनःप्राज्ञंनामात्रेविद्यतेगतिः ॥ २३ ॥

भाषा–अकार विश्व को प्राप्त करता है उकार तैजस को

मकार प्राज्ञ को अमात्र ॐकार में गति नहीं है ॥ २३

मंत्रः—अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यःप्रपञ्चोपशमःशिवोऽद्वैतएवमों कारआत्मैवसंविशत्यात्मनाऽऽत्मानंयएवंवेद ॥ १२ ॥

मंत्रः—ॐकारंपादशोज्ञात्वाविद्यात्मात्रानसंशयः ॥ ॐकारंपाद शोज्ञात्वानकिंचिदपिचिन्तयेत् ॥ २४ ॥ युञ्जीतप्रणवेचेतःप्रण वोब्रह्मनिर्भयम् ॥ प्रणवेनित्ययुक्तस्यनभयंविद्यतेक्वचित् ॥२५॥

भाषा—अमात्र चतुर्थ व्यवहार से रहित प्रपंच से शांत शिव अद्वैत ऐसा ॐकार में आत्मा प्रवेश होता है जो ऐसे आत्मा को जानता है ॥ १२ ॥ ॐकार को पाद २ से जाने और मात्रा भी समझै। ॐकार को पाद २ से जानकर कुछ न चिंतवन करै २४ ॐकार में चित्त लगावे ॐ निर्भय ब्रह्म है ॐकार में नित्य युक्त पुरुष को कहीं भय नहीं है ॥२५॥

मंत्रः—सोकामयत। बहुस्यांप्रजायेयेति। तपोऽतप्यत। सतप स्तप्त्वा। इद ँसर्वमसृजत ॥

भाषा—वह आत्मा इच्छा करता हुआ बहुत हो जाऊं। ज्ञान रूप तप किया वह तप तपकर यह विश्व उत्पन्न किया।

मंत्रः—यदिदंकिंच। सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत् ॥ यदिदंकिंचय त्किंचेदमविशिष्टम्। तदिदंजगत्सृष्ट्वाकिमरोदित्युच्यतेतदेवसृष्टं जगदनुप्राविशदिति। तत्रैतच्चिन्त्यंकथमनुप्राविशदितिकिंयः स्रष्टासतेनैवाऽऽत्मनाऽनुप्राविशदुतान्येनेति किंतावद्युक्तम्। क्त्वा प्रत्ययश्रवणाद्यःस्रष्टासएवानुप्राविशदिति ॥

भाषा—जो कुछ यह विश्व है उसे रच कर उसी में प्रवेश किया।

मंत्रः—सयश्चायंपुरुषे । यश्चासावादित्ये । सएकः ॥
भाषा—वह यह जो पुरुष में है यह वह जो आदित्य में है वह एक है ॥
मंत्रः—सयएवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति ।
एतंप्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति एतंमनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतंविज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति ।
भाषा—वह यह है जो इस तरह जानता है । देह त्याग करने पर इस अन्नमयी आत्मा को उल्लंघन करता है फिर प्राणमयी आत्मा को उल्लंघन करता है फिर मनोमय आत्मा को उल्लंघन करता है फिर इस विज्ञानमय आत्मा को उल्लंघन करता है फिर इस आनन्दमय आत्मा को उल्लंघन करता है अर्थात् पंच कोश से अलग होकर शुद्ध आत्मा हो जाता है ॥ इति तैतरीये ब्रह्म निरूपण मंत्राः समाप्ताः
मंत्रः—ॐआत्मावाइदमेकएवाग्रआसीत् ॥
भाषा—ॐएक आत्माही आगे प्रथम ही से एक हुआ जो प्राप्त हो ग्रहण करै विषयों को ग्रहण करै जो इसका संतत भाव है इसीसे आत्मा कहा गया है ॥
मंत्रः—सईश्वतलोकान्नुसृजाइति ॥
भाषा—वह परमात्मा सर्वज्ञ स्वभाव से लोकों को उत्पन्नकिया है ॥
मंत्रः—सइमाल्लोकांनसृजत ॥
भाषा—वह इन लोकों को पैदा करता भया है ॥

मंत्रः-एषब्रह्मैषइन्द्रएषप्रजापतिरेतेसर्वेदेवाइमानिचपञ्चमहाभूतानि॥ पृथवीवायुराकाशआपोज्योतींपीत्येतानीमानिचक्षुद्रमिश्राणीव ॥

भाषा-वह ब्रह्म है वही इन्द्र है वही प्रजापति है वही सब देव पंचतत्व पृथ्वी वायु आकाश जल अग्नि और भी क्षुद्र मिश्र वस्तु है ॥

मंत्रः-नेत्रेजागरितंविद्यात्कण्ठेस्वप्नंसमादिशेत् ॥
सुषुप्तंहृदयस्थंतुतुरीयंमूर्ध्निसंस्थितम् ॥ इति ॥

ॐपुरुषेहवाअयमादितोगर्भोभवतियदेतद्रेतः इतिसप्तमधातुरूपं रेतएवगर्भः पतिर्जायांप्रविशतिगर्भोभूत्वासमातरम्। तस्यांपुनर्नवोभूत्वादशमेमासिजायते ॥ आत्मावैपुत्रनामाऽसि ॥

भाषा-नेत्र में जागृत अवस्था कंठ में स्वप्न अवस्था हृदय में सुषुप्ति अवस्था तुरीय आत्मा ब्रह्म की अवस्था शीश में है आत्मा ही वीर्य सप्तम धातु में प्रविष्ट माता के गर्भ में जाकर दशम मास में पुत्र नाम से पैदा होता है इसी से पुत्र आत्मा कहा जाता है।

इतिश्रीविज्ञानशिक्षासर्वस्वेऐतरीयब्रह्मनिरूपणमंत्राःनवमोऽध्यायः।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

ब्रह्मनिरूपणश्रुतयःछान्दोग्योपनिषत् नाम दशमोऽध्यायः।

मंत्रः-ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥
ॐमितिसद्गायतितस्योपव्याख्यानम् ॥१॥

भापा—ॐ यह अक्षर गान करना उद्गीथ है उसकी उपासना करै। ॐकार ही सत् है यह गान करना इसका व्याख्यान है।
मंत्रः—त्रयोधर्मस्कंधायज्ञोऽध्ययनंदानमितिप्रथमस्तपएवद्वितीयोब्रह्मचार्याचार्यकुलवासीततीयोऽस्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादन्सर्वएतेपुण्यलोकाभवन्तिब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥
भापा—तीन धर्म की शाखा हैं यज्ञ अध्ययन दान प्रथम तप द्वितीय ब्रह्मचर्य आचार्य कुल वासा हो तीसरा आचार्य कुलही में आत्मा को समाप्त करै इससे पुण्य लोक होते हैं ब्रह्म में स्थित हो मुक्ति पाता है॥

मंत्रः—गायत्रीवाइदꣳसर्वंभूतंयदिदंकिंचवाग्वैगायत्रीवाग्वाइदꣳसर्वंभूतंगायतिचत्रायतेच ॥
भापा—जौन यह सब विश्व है गायत्री है जो कुछ वाणी है गायत्री है सबको रक्षा करने से गायत्री नाम है
मंत्रः—सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीत। अथखलुक्रतुमयःपुरुषोयथाक्रतुरस्मिंल्लोकेपुरुषो भवतितथेतःप्रेत्यभवतिसंक्रतुकुर्वीत ॥ १ ॥

भापा—यह सब जगत ब्रह्म है उससे ही ज उत्पन्न और उसही में ल लीन होता है ऐसा समझ कर शांत हो उपासना करै ॥ अथ क्रतुमयी पुरुष है जैसा क्रतु इस लोक में होता है वैसाहो यहां से मर कर होता है इससे क्रतु करै ॥
मंत्र—सहोवाचविजानाम्यहंयत्प्राणोब्रह्मकंब्रह्मखंचनविजानामीति तेहोचुर्यद्वावकंतदेवखंयदेवखंतदेवकमितिप्राणंचहास्मै तदाकाशंचोचुः ॥५॥

भापा—वह ब्रह्मचारी कहाता है मैं जानता हूं प्राण ब्रह्म है प्राण से जीवन है कं खं को नहीं जानताहूं वे कहते हैं जो कं है वही खं है जो खं है वही कं है प्राण तथा कं खं आकाश वाची अचेतन कैसे ब्रह्म मानते हो इससे ब्रह्म नहीं जानते हो।

मंत्र—येनाश्रुतᳬश्रुतंभवत्यमतंमतमविज्ञातंविज्ञातमितिकथंनुभगवःसआदेशोभवतीति ॥३॥

भा०—वह शिक्षा दीजिये जिससे नहीं सुना हुआ सुना होजाय अमत मत हो नहीं ज्ञात ज्ञात होजाय वह शिक्षा कैसी है।

मंत्र—यथासोम्यैकेनमृत्पिण्डेनसर्वंमृन्मयंविज्ञातᳬस्याद्वाचाऽऽरम्भणंविकारोनामधेयमृत्तिकेत्येवसत्यम् ॥४॥

भापा—हे सौम्य जैसे एक मृत्तिका पिंड से सब मृत्तिका मात्र का ज्ञान होता है अलग् २ नाम वाणी का विकार है मृत्तिका ही सत्य है ॥४॥

मंत्रः—यथासोम्यैकेनलोहमणिनासर्वंलोहमयंविज्ञातᳬस्याद्वाचाऽऽरम्भणंविकारोनामधेयंलोहमित्येवसत्यम् ॥५॥

भा०-जिसतरह एक सुवर्ण की मनकासे सब सुवर्णका ज्ञान होताहै पृथक् २ नाम वाणी का विकार है सुवर्णही सत्य है ॥५

मंत्रः—यथासोम्यैकेननखनिकृन्तनेनसर्वंकार्ष्णायसंविज्ञातᳬस्याद्वाचाऽऽरम्भणांविकारोनामधेयंकार्ष्णायसमित्येवसत्यमेवᳬसोम्यसआदेशोभवतीति ॥६॥

भा०-हेसौम्य जिसतरह एक नहरन से सब लोहे का ज्ञान होता है पृथक् २ नाम वाणी का विकारहै सो लोह ही है ऐसे सब नाम रूप ब्रह्म है यह सत् शिक्षा है॥

मंत्रः—सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैकआहुर
देवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंतस्मादसतःसज्जायत ॥१॥
भाषा—हे सौम्यसत् ही आगे हुआ एक अद्वितीय उसको अस
ही आगेहुआ ऐसा कहते हैं असत् ही अद्वितीयसे सत् हुआ
मंत्रः- कुतस्तुखलुसोम्यैदꣳस्यादितिहोवाचकथमसतःसज्जायेत
ति । सत्येवंसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥
भा०—हे सौम्य असत् से सत् होने का कहीं प्रमाण नहीं है य
आगे हुआ एक अद्वितीय ब्रह्म है ॥
मंत्रः—सेयंदेवतैक्षतहन्ताहमिमास्तिस्रोदेवता अनेनजीवेनाऽऽत्म
नानुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणीति ॥२॥
भाषा—वह यह प्रकृति दृष्टि करती भई बहुत होऊं ये तीन देव
इस जीव से,तदंनु प्रवेश करके नाम रूप प्रगट किये गये ॥
मंत्रः—सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वंतत्सत्यꣳसआत्मातत्त्व
सिश्वेतकेतोइतिभूयएवमाभगवान्विज्ञापयत्विितित थासोम्येति
होवाच ॥७॥
भाषाः—वह यह अणु रूप जगत का मूल भूत ही सब जग
है वह आत्मा तत्त्व मसि है हे श्वेत केतो हे,भगवान पि
उपदेश करिये तब कहते हैं
मंत्रः—सयएषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वंतत्सत्यꣳसआत्मातत्त्व
सिश्वेतकेतोइतिइतिभूयएवमाभगवान्विज्ञापयत्विितितथासोम्ये
तिहोवाच ॥४॥
भाषा—वह यह जो मूल भूत अणु तदात्म वही सब जगत
सत्य है वही आत्मा है तत्त्व मसि श्वेत केतो यह सु भगवा

फिर उपदेश करिये सौम्य तब कहते हैं।

मन्त्रः—इमाःसौम्यनद्यःपुरस्तात्प्राच्यःस्यन्दन्तेपश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्तिससमुद्रएवभवतितायथातत्रनविदुरियमह मस्मीयमस्मीति ॥१॥

भाषा—हे सौम्य यह नदी पूर्व पश्चिम में समुद्र की ओर जाती हैं और समुद्र में मिल कर समुद्रही हो जाती हैं वहां वे सब नहीं जानती हैं यह हम हैं यह हम हैं ॥१॥

मन्त्र-एवमेवखलुसौम्येमाःसर्वाप्रजाःसतआगम्यनविदुःसतआग च्छामहइतितइहव्याघ्रोवासिंहोवावृकोवावराहोवाकीटोवा पतङ्गो वादंशोवामशकोवायद्यद्भवन्तितदाभवन्ति ॥२॥

सयएषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वंतत्सत्यꣳ स आत्मातत्त्वमसिश्वे तकेतोइतिभूयएवमाभगवान्विज्ञापयत्वितितथासोम्येतिहोवाच॥

भाषा-ऐसे ही हे सौम्य यह सब प्रजा सत् से आई हैं परन्तु नहीं जानती हैं कि हम सब सत् से आई हैं वही सब सिंह व्याघ्र वृक (भेड़िया) वराह कीट पतंग दंश मशा जो जो रूप सब उसी से हैं वह यह अणु भूत तादात्म्य यह सब जगत ततसत्य आत्मा तत्त्वमसि हे हे श्वेतकेतु यह सुन भगवान फिर कहिये तब कहते हैं हे सौम्य ॥

मन्त्र-एवमेवखलुसोम्यविद्धीतिहोवाचजीवापेतंवावकिलेदंम्रियते न जीवोम्रियतइतिसयएषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वंतत्सत्यꣳ स आत्मातत्त्वमसिश्वेतकेतोइतिभूयएवमाभगवान् विज्ञापयत्विति तथासोम्येतिहोवाच ॥३॥

भाषा—ऐसे ही हे सौम्य जानो जीव से रहित यह शरीर मरता

हे जीव नहीं मरता है वह जो अणु भूत वही सब जगत तत् सत्य वह आत्मा तत्व मसि है हे श्वेतकेतो यह सुन भगवान फिर कहिये तब कहते हैं हे सौम्य ॥३॥

मन्त्र-सएवाधस्तात्सउपरिष्टात्सपश्चात्सपुरस्तात्सदक्षिणतःसउत्तरतःसएवेद०सर्वमित्यथातोहंकारादेशएवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहंपश्चादहंपुरस्तादहंदक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेद०सर्वमिति ॥१॥

भा०-वही नीचे ऊपर पीछे आगे दक्षिण उत्तर है वही यह सब जगत है अहंकारा देश में वही हम नीचे ऊपर पीछे आगे दक्षिण उत्तर सब कुछ हमही हम हैं ॥

मन्त्र-अथातआत्मादेशएवाऽऽत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मापश्चादात्मा पुरस्तादात्मादक्षिणतआत्मोत्तरतआत्मैवेद० सर्वमितिस वाएपएवंपश्यन्नेवंमन्वानएवंविजानन्नात्मरतिरात्मक्रीडआत्ममिथुनआत्मानन्दःसस्वराड्भवतितस्यसर्वेषुलोकेषुकामचारो भवति ॥ अथयेऽन्यथाऽतोविदुरन्यराजानस्तेक्षय्यलोका भवन्तितेषा०सर्वेषु लोकेष्वकामचारोभवति ॥२॥

भा०-अब आत्म शिक्षा आत्मा ही नीचे आत्माही ऊपर आत्मा ही पीछे आत्मा ही आगे आत्मा ही दक्षिण आत्मा ही उत्तर आत्मा ही यह सब जगत है ऐसे देखते हुए जानते हुए आत्मरति आत्म क्रीड आत्म मिथुन आत्मानन्द स्वराड होता है उसका सब लोको में प्रवेश है जो दूसरे तरह जानते उनको क्षीण लोक होते हैं सब लोकों प्रवेश नहीं होता है ॥२॥

मंत्रः-उत्पत्तिप्रलयंचैवभूतानामागतिंगतिम्वेत्तिविद्यामविद्यांच सवाच्योभगवानिति ॥

भाषा—उत्पत्ति प्रलय जीवों की गति अगति जानता है विद्या अविद्या को जानता है वह भगवान है ॥

मंत्र—यावान्वाअयमाकाशस्तावानेपोऽन्तर्हृदयआकाशउभेअस्मिन्द्यावापृथवीअन्तरेवसमाहितेउभावग्निश्चवायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौविद्युन्नक्षत्राणियचास्येहास्तियच्चनास्तिसर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥३॥

भाषा—जितना यह आकाश है तितना यह अन्तर हृदय आकाश है दोनों में द्यावा पृथ्वी अग्नि वायु विजली नक्षत्र जो है और जो नहीं है सब इसमें प्राप्त है ॥३॥

मंत्रः—सवाएपआत्माहृदितस्यैतदेवनिरुक्तंहृदयमितितस्माद्धृदयमहरहर्वाएवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥३॥

भाषा—वह यह आत्मा हृदय में है उसीका यह हृदय कहा गया है तिससे हृदय को नित्य जानने वाला स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ॥३॥

मन्त्र—अथयएषसंप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थायपरंज्योतिरूपसंपद्यस्वेनरूपेणाऽभिनिष्पद्यतएषआत्मेतिहोवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेतितस्यहवाएतस्यब्रह्मणोनामसत्यमिति ॥४॥

भाषा—इस शरीर से उठकर जो परं ज्योति अपने रूप में स्थित है वह आत्मा है अमृत अभय ब्रह्म है उसी ब्रह्म का नाम सत्य है ॥४॥

मन्त्र—अथयआत्मासंसेतुर्विधृतिरेषांलोकानामसंभेदायनैतंसेतुमहोरात्रेतरतोनजरानमृत्युर्नशोकोनसुकृतं न दुष्कृतंसर्वेपाप्मानोऽतोनिवर्तन्तेऽपहतपाप्माएपब्रह्मलोकः ॥१॥

भापा–जो यह आत्मा है वही इन लोकों का सेतु है इस सेतु पर चलने वाले के वृद्धापन मृत्यु शोक सुकृत दुष्कृत सव पाप निवृत्त हो जाते हैं पाप रहित ब्रह्म ही ब्रह्म लोक है ॥१॥

मंत्रः–तद्यत्रैतत्सुप्तःसमस्तःसम्प्रसन्नःस्वप्नंनविजानात्यासुतदा नाडी पुतृप्तोभवतितंनकश्चनपाप्मास्पृशतितेजसाहित्तदासपन्नो भवति ॥३॥

भापा–जहां यह आत्मा अपने रूप सव वृत्तियों को संहार करके शयन करता है वह प्रसन्न रूप है तहां कोई स्वप्न नहीं देखता है न कोई पाप स्पर्श करता है अपने तेज से सपन्न होता है ॥ ३ ॥

मंत्रः–मघवन्मर्त्यंवाइदꣳशरीरमात्तंमृत्युनातदस्यामृतस्याशरीर स्याऽऽत्मनोऽधिष्टानमात्तोवैसशरीरःप्रियाप्रियाभ्यांनवैसशरीर स्यसतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरंवावसन्तंनप्रियाप्रिये स्पृशतः ॥१॥

भापा–हे इन्द्र मरने वाला यह शरीर है अशरीरी आत्मा अमृत है इस का स्थिति स्थान शरीर है प्रिय अप्रिय इस शरीर के नहीं है यह जड़ है और वह शरीर से अलग निर्विकार है प्रिय अप्रिय को नहीं स्पर्श करता है ॥१॥

मंत्रः–एवमेवैपसंप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थायपरंज्योतिरूपसंप द्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यतेसउत्तमपुरुषःसतत्रपर्येतिजक्षत्क्रीडन् रममाणःस्त्रीभिर्वायानैर्वाज्ञातिभिर्वानोपजनꣳस्मरन्निदꣳशरीरꣳस यथाप्रयोग्यआचरणेयुक्तएवमेवायमस्मिञ्छरीरेप्राणोयुक्तः ॥३

भापाः–ऐसे ही यह आत्मा इस शरीर में प्रगट हो ज्योति रूप

प्राप्त होकर वह उत्तम पुरुष क्रीडा करता हुआ स्त्री सवारी जाति वाले सबसे मिलता प्राण सहित अनेक आचरण करता है।

मंत्रः—तद्धै तदब्रह्मप्रजापतयउवाचप्रजापतिर्मनवेमनुःप्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्ययथाविधानंगुरोःकर्मातिशेषेणाऽभिसमा वृत्यकुटुम्बेशुचौदेशेस्वाध्यायमधीयानोधार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणिसंप्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्रतीर्थेभ्यःसख ल्वेवंवर्तयन्यावदायुपंब्रह्मलोकमभिसंपद्यतेनचपुनरावर्ततेनचपुनरा वर्तते ॥ १ ॥

भाषा—यह ब्रह्म निरूपण ब्रह्मा प्रजापति से प्रजाति मनुसे मनुजी प्रजा से। आचार्य कुल से वेद पढ़कर कुटुम्ब में रहकर पवित्र स्थान में स्वाध्याय करके धार्मिक कर्मकर इन्द्रीजित हो तीर्थ में आयु समाप्त करे वह ब्रह्मलोक पाता है यहां फिर नहीं आता है नहीं आता है।

इति श्री विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे छान्दोग्योपनिषद ब्रह्म निरूपण तत्व नाम दशमोऽध्यायः।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

बृहदारण्यकोपनिषद नाम एकादशोध्यायः।

मंत्रः—नवेहकिञ्चनाग्रआसीतमृत्युनैवेदमावृतआसीत् ॥ इत्यादि

टीका—अथाग्रेरश्वमेधोपयोगिकस्योत्पत्तिरुच्यते। तद्विषयदर्शन विवक्षयैवोत्पत्तिःस्तुत्यर्था। नैवेहकिञ्चनाग्रआसीत्। इहसंसार मण्डलेकिञ्चनकिञ्चदपिनामरूपप्रविभक्तविशेषंनैवासीतनबभूव

प्रागुत्पत्तेर्मनआदेः किंशून्यमेवबभूवशून्यमेवस्यात् । नैवेहकिञ्च नेतिश्रुतेः । नकार्यंनकारणंवासीदुत्पत्तेश्च । उत्पद्यतेहिघटः । अतःप्रागुत्पत्तेर्घटस्यनास्तित्वम् । ननुकारणस्यननास्तित्वंमृत्पिण्डादिदर्शनात्यत्रोपलभ्यतेतस्यैवनास्तिताअस्तुकार्यस्यनतुकारणस्योपलभ्यमानत्वात् । न । प्रागुत्पत्तेःसर्वानुपलम्भात् ॥

भाषा—आगे इस संसार मंडल में कुछ भी नाम रूप नहीं था शून्य ही के समान था सब मृत्यु से ग्रसित नाश रूप यह जगत रहा ॥

मंत्रः—आत्मैवेदमग्रआसीतपुरुषविधःसोऽनुवीक्ष्यनान्यदात्मनोऽपश्यतसोऽहमस्मीत्यग्रेव्याहरत्ततोऽहन्नामाभवत्तस्मादप्येतर्ह्यामंत्रितोऽहमयमित्येवाग्रउक्त्वाथान्यन्नामप्रब्रूतेयदस्यभवतिसयत्पूर्वोऽस्मातसर्वस्मातसर्वान्पाप्मनऔषत्तस्मात्पुरुषओषतिहवंसतंसतंयोऽस्मात्पूर्वोबुभूपतियएवंवेद ॥ १ ॥

भाषा—आत्मा ही यह आगे होता भया है आत्मा से और कुछ नहीं है वही पुरुष है वह हम हैं अहंनाम भया इससे पहले हम यह हैं पहले कहकर और नाम कहते हैं इससे सबसे पहले पुरुष ही है ऐसा जानो ॥१॥

मंत्रः—बृहदारण्य—१ ब्रह्मण—अध्याय २ मंत्र ७

तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत् । तन्नामरूपाभ्यामेवव्याक्रियतासौनामायमिदंरूपइतितदिदमप्येतर्हिनामरूपाभ्यमेवव्याक्रियतेऽसौनामायमिदंरूपसएपइहप्रविष्टःआनखाग्रेभ्योयथाक्षुरः क्षुरधानेवहितःइत्यादिबृहन्मं० ॥

भाषा—वही यह अव्याकृत होता भया उसका नाम रूप कहते

हैं जो नाम है वही रूप है नाम रूप परस्पर संमिलित हैं जैसे नख से दुराधान कहा गया है।

मन्त्र—सयोऽतएकैकमुपास्तेनसवेद:कृतस्नोह्येषोऽतएकैकेनभव त्यात्मेवोपासीताचह्येतेसर्वएकंभवन्ति ॥

भापा—वह जो एक एक को पृथक रूप से उपासना करता है वह नहीं जानता है जो सब यह एकही से है वह एक आत्म है ऐसे उपासना करता है ये सब एकही होते हैं ऐसा उपासक ठीक है यह हृदय से आत्मिक विचार है देह व्यवहार पृथक है।

मन्त्र—तदेतत्प्रेय:पुत्रात्प्रेयोवित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा ॥ सयोऽन्यमात्मनः प्रियंब्रुवाणंब्रूयात्प्रियꣳरोत्स्यती तीश्वरोहतथैवस्यादात्मानमेवप्रियमुपासीत सआत्मानमेवप्रियमु पास्तेनहास्यप्रियंप्रमायुक्तंभवति ॥८॥

भापा—वह यह आत्मा पुत्र से प्रिय है धन से प्रिय है और सबसे प्रिय है जो आत्मा से प्रिय दूसरा पुत्रादिक है वह सत्य नहीं यह आत्मा ही सबसे प्रिय है आत्मा ही उपासना करें पुत्र शरीरादि को प्रिय जानने वाला हास्यस्पद मरणशील है ॥८॥

मन्त्र—ब्रह्मवाइदमग्रआसीत्तदात्मानमेवावेदहंब्रह्मास्मीतितस्मा त्त् सर्वमभवत्तद्योयोदेवानांप्रत्यबुध्यतसएवतदभवत्तथर्षीणां त थामनुष्याणांतद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवःप्रतिपेदेऽहंमनुरभवꣳ सूर्य्य श्चेतितदिदमप्येतर्हियएवंवेदाऽहंब्रह्मास्मीतिसइदꣳ सर्वंभवति तस्यहनदेवाश्चनाभूत्याईशतआत्माह्येषाꣳसभवत्यथयोऽन्यांदेव तामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीतिनसवेदयथापशुरेवꣳसदेवानां

यथाहवैबहवःपशवोमनुष्यंभुञ्ज्युरेवमेकःपुरुषोदेवान् भुनक्त्येक स्मिन्नेवपशावादीयमानेऽप्रियंभवतिकिमुबहुपुतस्मादेषांतन्न प्रियं यदेतन्मनुष्याविद्युः ॥१०॥

भाषा—ब्रह्म ही यह आगे होता भया वह ब्रह्म आत्मा है 'अहं ब्रह्माऽस्मि' मैं ब्रह्म हूं तिससे सब भया है वही देवतों के ऋषियों के मनुष्यों के रूप में है ऋषि वामदेव प्राप्त भये हैं मनुहूं सूर्यहूं यह सब हूं जो ऐसे जानता है मैं ब्रह्म हूं वह यह सब होता है उसके देवतादि कोई पृथक् नहीं, जो और देवता की उपासना करते हैं मै और हूं वह और है वह नहीं जानता है जैसे देवताओं का पशु होता है ऐसे वह है उसी के प्रिय से सब प्रिय है जिसको मनुष्य प्रिय समझते हैं वह प्रिय नहीं है॥

इति श्री वेदान्त शिक्षा सर्वस्वे बृहदारण्यकोपनिषत् नाम एकादशोऽध्यायः।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

आत्मानात्मविवेके प्रश्नोत्तरंनाम द्वादशोऽध्यायः।

प्र०—वेदान्तेतात्पर्य्यनिर्णयेकतिलिङ्गप्रमाणानिसंति—वेदान्त केतात्पर्य्यनिर्णयमेंकितनेलिङ्गप्रमाणहैं।

उ०—वेदान्तेतात्पर्य्यनिर्णयेषड्लिङ्गप्रमाणानिसंति—

श्लो०—उपक्रमोपसंहारावभ्यासोपूर्वताफलम् ॥ अर्थवादोपपत्ती चलिङ्गंतात्पर्य्यनिर्णये ॥१॥ यथासदेवसौम्येदमग्रआसीदित्युप-

क्रमः, एतदात्म्यमिदंसर्वतस्सत्यंसआत्मेतिउपसंहारः, असकृत्तत्व मसीत्यभ्यासमान्तरागम्यत्वमपूर्वत्वम्, एकविज्ञानेनसर्वविज्ञानं फलम्, सृष्टिस्थितिप्रलयप्रवेशनियमनानिचार्थवादा, मृदादिदृष्टा न्तानामुपपत्तयःएतैलिङ्गैर्ब्रह्मपरत्वंनिश्चयंइतिषट्लिङ्गानि ॥

भा०-वेदान्त के तात्पर्य्य निर्णय में ६ लिङ्ग प्रमाण होते हैं। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यासां तरअगम्यत्व पूर्वता, फल, अर्थवाद,उपपत्ती, येषट् लिङ्ग वेदांत तात्पर्य्य निर्णय में प्रमाण हैं जैसे-सदा ही हे सौम्य साधु प्रकृति वाले श्वेतकेतु यह आगे होता भया है यह उपक्रम है १ यह आत्मा सम्बन्धी यह सब है वह सत्य है वह आत्मा यह है उपसंहार है २ वार वार तत्वमसि यह अभ्यास के अन्तर अगम्यपन यह अपूर्वता है ३ एक के जानने से सर्व जाना जाता है यह फल है। ४ सृष्टि स्थिति प्रलय प्रवेश के नियम यह अर्थवाद है।५॥ मृदादि दृष्टान्त देकर ब्रह्म को समझाना यह उपपत्ति है ६ यह षट लिङ्ग वेदांत तात्पर्य्य में होते हैं।

प्र०-सृष्टिः का-सृष्टि क्या है।

उ०-इच्छामात्रंप्रभोःसृष्टिरितिसृष्टिविनिश्चिताः ॥ कालात्प्र- सूतिंभूतानांमन्यन्तेकालचिन्तकाः ॥१॥ भोगार्थंसृष्टिरित्यन्येक्री डार्थमितिचापरे॥ देवस्यैषस्वभावोऽयमाप्तकामस्यकास्पृहा ॥२॥ विभूतिंप्रसवंत्वन्येमन्यन्तेसृष्टिचिंतकाः ॥ स्वप्नमायासरूपेतिसृष्टि रन्यैःप्रकल्पिता ॥३॥

भा० प्रभु की इच्छा मात्र ही सृष्टि है काल चिंतक काल ही से जीवों की उत्पति मानते हैं ॥१॥ कोई भोग के वास्ते

सृष्टि दूसरे क्रीड़ा के अर्थ मानते हैं। कोई ईश्वर का स्वभाव मानते हैं और कहते हैं आप्त काम के चाह कहां है ॥२॥ और सृष्टि चिंतक विभूति प्रसव मानते हैं और स्वप्न की भांति माया सरूप सृष्टि कहते हैं ॥३॥

प्र०—माया का—माया क्या है।

उ०—ब्रह्माश्रयासत्वरजस्तमोगुणात्मिकामाया—ब्रह्मके आश्रय वाली सत्वरजतमोगुण मयी माया है।

प्र०—मायातःसृष्टिःकथंजाता—मायासे सृष्टिकैसे पैदा भई है

उ०—ततआकाशःसंभूतःआकाशाद्वायुःवायोस्तेजःतेजसआपःअद्भ्यःपृथवीएतेभ्यःस्थूलदेहः।

भा०—माया से महतत्व उससे अहंतत्व उससे आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, सबसे स्थूल देह है।

प्र०—ज्ञानेन्द्रियाणामुत्पत्तिः कथम्—ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति कैसे हैं।

उ०—एतेषां पंचतत्वानामिति-इन पंच तत्वों के सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्री भई हैं जैसे आकाश के सात्विकांश से श्रोत्र इन्द्री, वायु के सात्विकाँश से त्वचा, अग्नि के सात्विक अंश से नेत्र, जल के सात्विक अंश से जिव्हा, पृथ्वी के सात्विक अंश से नासिका इन्द्री भई, इन सब पञ्च तत्वों के सात्विक अंश मिलकर अन्तः करण चतुष्टयचित् मन बुद्धि अहंकार भये हैं। वासुदेव, चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र ये चारों के देवता हैं॥

प्र०—कर्मेन्द्रियाणिकथंजातानि—कर्मेन्द्री कैसे भई है।
उ०—एतेषांपंचतत्वानांराजसांशात्—इन पंच तत्वों के राजसी अंश से कर्मेन्द्री भई हैं जैसे आकाश के राजस अंश से वाणी, वायु के राजस अंश से हाथइन्द्री, अग्नि के राजस अंश से पाद इन्द्री, जल के राजस अंश से उपस्थ (लिंग) इन्द्री, पृथ्वी के राजस अंश से गुदा इन्द्री है, पंचतत्व सबके राजसी अंश से पंचप्राण हैं पंचप्राण दश इन्द्री मन बुद्धि १७ तत्व से सूक्ष्म देह है॥
प्र०—जीवःकः—जीव कौन है?
उ०—शरीरत्रयाभिमानी ब्रह्म प्रतिबिम्बो जीवः—तीन शरीर का अभिमानी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है वह जीव अविद्या उपाधि से अपने को ईश्वर से भिन्न जानता है।
प्र०—ईश्वरःकःईश्वर कौन है?
उ०—मायोपाधिःसनईश्वरइत्युच्यते—शुद्ध माया की उपाधि युक्त ईश्वर कहा जाता है, इस उपाधि भेद से जीव ईश्वर का भेद जबतक रहेगा तबतक जीव जन्म मरण रूप संसार से नहीं छूटेगा इससे जीव ईश्वर की भेद बुद्धि स्वीकार नहीं करे॥
प्र०—साहंकारस्यजीवस्यनिरहंकारस्यसर्वज्ञेश्वरस्यकथमभेदश्चोभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात्॥ साहंकार जीव निरहंकार ईश्वर की अभेदता कैसे॥
उ०—जीवेश्वरयोर्वाच्यार्थेभेदत्वंलक्ष्यार्थेद्वयोरेकताघातोद्वयोरभेदत्वम्॥
भा०—जीव ईश्वर का वाच्यार्थ में भेद है लक्ष्य अर्थ में दोनों

की एकता है इससे लक्ष्यार्थ मुख्य है अभेदता सिद्ध है ॥
प्र०—उभयोर्वाच्यलक्ष्यार्थत्वंकिम्-दोनों की वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ क्या है ।
उ०—स्थूल सूक्ष्मशरीराभिमानत्वंत्वंपदस्यवाच्यार्थः । उपाधिविनिर्मुक्तकूटस्थंशुद्धचैतन्यत्वंत्वंपदस्यलक्ष्यार्थः ॥१॥ स्वंसर्वज्ञादीतिविशिष्टत्वंईश्वरतत्पदस्यवाच्यार्थः, उपाधिशून्यशुद्धचैतन्यत्वंईश्वरतत्पदस्यलक्ष्यार्थः । एवंजीवेश्वरयोश्चैतन्यत्वेचैकतावाह्यतोभेदः ॥
भाषा— स्थूल सूक्ष्म देहाभिमानत्वं पद जीवकावाच्यार्थ है, उपाधि रहित कूटस्थ शुद्ध चैतन्य पन त्वंपद जीव का लक्ष्यार्थ है ॥ ऐसे ही सर्वज्ञादि विशेषण ईश्वर तत्पद का वाच्यार्थ है, उपाधि शून्य शुद्ध चैयन्य ईश्वर तत्पद का लक्ष्यार्थ इस भांति जीव ईश्वर की चैतन्यता लक्ष्यार्थ में समानता है वाहिरी उपाधि में भेद है यह भेद असत्य है ॥
प्र०—जीवस्यकर्मकतिविधम्—जीव के कर्म कितने प्रकार का है ।
उ०—संचितप्रारब्धक्रियमाणानितथाचकायिकवाचिकमानसानि तिसका संक्षेप से निर्णय यह है अनेक जन्मो के किये हुये कर्म इकट्ठे हो जाते हैं उनका संचित कर्म नाम है १ उन कर्मों से प्राप्त देह में सुख दुख भोग वाला कर्म उसका प्रारब्ध कर्म नाम है २ और इस शरीर में जो कर्म किया जाता है उसका क्रिय मान कर्म नाम है ३ कायिक वाचिक मानसिक कर्म है ॥
प्र०—जीवःकथंमुक्तस्स्यात्—जीव कैसे मुक्त हो ॥
उ०—गुरुपदेशाद्वेदांतश्रवणादियत्नतः गुरू के उपदेश वेदांत

श्रवणमननादिसे ज्ञानहोकर जीवनमुक्त फिर विदेह मुक्त होकर निर्विशेष होजाता है जीवन् मुक्त विदेह मुक्त के लक्षण आगे प्रकरण में कहेंगे

श्लो०--तनुंत्यजतुवाकाश्यांश्वपचस्यगृहेऽथवाज्ञानसंप्राप्तसमयेमुक्तोऽसौविगताशयः ॥ १ ॥

भाषा—काशी में देह त्याग करैं चहे चांडाल के घर में छोड़ें ज्ञान प्राप्त होने से अन्तः करण रहित मुक्त हो जाता है

भजन—आतम रूप भुलानो विषय में।

को हम कौन कहां के वासी, सबही मर्म हेरानो ॥ विषय०
अन्त समयकी खबर नहीं कछु,फिरत गलिन मस्तानो ॥ विषय०
सद्गुरु सीख सुनै नहि मानै, करत अपन मनमानो ॥ विषय०
माधवराम ब्रह्म सुख चाहे, हरि पद रहु लपटानो ॥ विषय०

इति श्री विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे आत्मानात्मविवेके प्रश्नोत्तरप्रक्रिया नाम द्वादशोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

आत्मानात्म विवेक वर्णनम् नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

मन्त्र—सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाऽद्वितीयम् ॥

भाषा—उद्दालक मुनि अपने श्वेतकेतु पुत्रसे कहते हैं हे सौम्य शुद्ध स्वभाव यह दृश्य जगत सुर नर पशु पक्षी तृण कीट पर्वत नदी से पूरित अपनी उत्पत्ति से पहले निरंजन निष्क्रिय कूटस्थ ब्रह्म रहा है यह सुन स्वेत केतु ने बहुत शंका करी

वे सब उद्दालक मुनि जी दूर कर के ब्रह्मनिरूपण समझाया विस्तार होने से नहीं लिखा है आत्मानात्मवर्णनसुनो इसमें षट् भेद हैं १ त्रिगुणांतःकरण २ त्रिशरीर ३ पंचकोश ४॥२॥ तीन वृति से प्रथक आत्म सुख है पहले षट् भेद में है शुद्ध ब्रह्म १ ईश्वर २जीव ३ जीवईश्वरभेद ४ अविद्या ५ अविद्या चेतन ६ ॥ त्रिगुणअंतःकरणत्रिशरीर वर्णन देखिये सर्वईश्वर से सृष्टि, सर्वज्ञ ईश्वर से प्रकृति एकहूं वहुतहो जाऊं। ईश्वर प्रकृत से महत्तत्व महत्तत्व से अहंतत्व उस अहंतत्वसे ईश्वरेच्छा से आकाश फिर आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी में ये पांचो तत्व अहंतत्व के तामसी अंश से उत्पन्न भये हैं। फिर वाणी, हाथ, पाद, मल, मूत्र की इन्द्री ये पांच कर्मेन्द्री और श्रवण त्वचा नासिका नेत्र जिव्हा ये पांच ज्ञानेन्द्री दोनों मिलकर दश इन्द्री अहंतत्व के रजो भाग से पैदा हुई है ॥ फिर अहंतत्व के सात्विक भाग से कर्मेन्द्रियों के देवता क्रमसे अग्नि इन्द्र, विष्णु, मृत्यु, प्रजापति ये पांच और ज्ञानेन्द्री के देवता क्रम से दिग्, वायु अश्वनी कुमार सूर्य, वरुण ये पांच दोनों मिलके दशेन्द्री के दश देवता हैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच विषय हैं ॥

अहंतत्व के तम रज सत्व से पांच तत्व,१० इन्द्री,१० देवता ५विषय से आत्मा प्रथक है॥ अब अन्तःकरण चतुष्टय वर्णन है सब इन्द्रियां और देवताओं के सात्विक अन्श से अन्तः करण होता है उस अंतःकरण के चार भेद चित,मन,बुद्धि, अहंकार, हैं चित्त का चितवन कर्म वासदेव देवता हैं मन का संकल्प

विकल्प द्विविधा करना चंद्रमा देवता है। बुद्धिका निश्चय करना कर्म ब्रह्मा देवता है। अहंकार का अभिमान करना कर्म रुद्र देवता हैं ये चार अन्तः करण से आत्मा पृथक् है। सब इन्द्रियाँ और देवताओं के रजोगुण से पंच प्राण होते प्राण, आपान, समान, उदान, व्यान और इन्हीं के पांच भेद और नाग, कूर्म,कृकल, देवदत्त धनंजयहैं इनसेभी आत्मा पृथक् है अब तीन शरीरों का वर्णन सुनिये। स्थूल सूक्ष्म कारण ये तीन शरीर हैं तहां स्थूल शरीर पांचो तत्वों को पंचीकरण से बनाहै। द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा कुर्यात्पुनः स्वे स्वे भागे न संयोज्याः परभागेषु योजयेत् ॥ पांचो तत्व के दो दो भाग करें फिर पाँचो दो दो भाग से एक २ भाग के चार २ भाग करें। उन चारो भागों को निज तत्व को छोड़ कर और चार तत्वोंको मिलावें जैसे आकाश के दो भाग किये फिर आधे भाग अकाश के चार भाग करलो तहां पहले आधे आकाश को छोड़कर आधे २ वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी में मिला दो। और पहले आधे वायु को छोड़कर आधे दूसरे वायु भाग के चार भाग कर पहले आधे आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी में मिलादो। फिर दूसरे आधे अग्नि के भाग को चार भाग करके पहले आधे २ आकाश, वायु, जल, पृथ्वी में मिलावो, इसी तरह जल के पहले आधे भाग को छोड़कर दूसरे आधे भाग को चार भाग करके पहले आधे २ आकाश वायु अग्नि और पृथ्वी के पहले भागों को मिलाते जावो। ऐसेही पृथ्वी पहले आधे भाग को छोड़कर दूसरे आधे भाग

को चार भाग करके पहले आधे २ आकाश, वायु, तेज, जल में मिलावो । ऐसा करने से हर एक तत्व आधा भाग तो उस तत्व का और उसके आधे में अठवां २ हिस्सा दूसरे तत्वों का रहेंगे इस तरह एक में आधा और चार हिस्से मिलकर पांच होगये पांचों के पाँच २ मिलाने से पचीश तत्व का स्थूल शरीर बनगया है ॥ इस स्थूल शरार से आत्मा पृथक है ॥

श्लो०—कललं त्वेकरात्रेणपंचरात्रेणवुद्बुदम् ॥ दशाहेनतुकर्कंधूः पेश्यंडंवाततःपरम् ॥ २॥ मासेनतुशिरोद्वाभ्यांबाह्वंघ्र्याद्यङ्गविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणिलिङ्गछिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥३॥ चतुर्भिधातवःसप्तपंचभिःक्षुत्तृडुद्भवः॥ षड्भिर्जरायुणावीतःकुक्षौभ्राम्यतिदक्षिणे ॥४॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥ शेतेविण्मूत्रयोर्गर्तेसजंतुर्जंतुसंभवे ॥ ५ ॥ कृमिभिःक्षतसर्वांगःसौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥ मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैःक्षुधितैर्मुहुः ॥६॥

अब स्थूल शरीर बननेकी रीति लिखते हैं—माता पिता अन्नादिक भोजन करते हैं उसका क्रमसे रस रक्त मांस आदि बनते हुये सातवीं धातु पुरुष के वीर्य और स्त्री के रेत होता है स्त्री के ऋतु काल में, पुरुष संग होने से पुरुष का वीर्य स्त्री रेत मिलकर धीरे २ वालक या कन्यां का शरीर बनता है उसका क्रम यह है वीर्य और रेत मिलकर एक रात में कलल अर्थात् घी और सहत मिलानेकी सूरत होती है पांच रातमें बुल्ला दश दिन में वेर के तुल्य उसके पीछे मांस की टुकड़ी ॥२ ॥ फिर एक महीने में शिर दूसरे मास में हाथ आदि अंग तीसरे मास में नख रोम चमड़ी कन्यां पुत्र का आकार बनता

है ॥३॥ चौथे मास में उसके शरीर में धातु उत्पन्न होते हैं पांचवें मास में भूख प्यास लगती है छठवे मास में झोरी में बंद माता की दाहिनी कोख में धीरे हिलता है ॥४॥ माता के खाये हुए अन्न जल से नल के द्वारा इसका पालन होता है गर्भाशय में जहां और कीट पैदा हैं यह सोता है ॥५॥ वहां कीड़े काटते हैं सुकमार होने से छन २ में मुर्छा होती है शिर पैर एक में फिर सातवें महीने में इश्वर की स्तुति करता है दशवें मास में जन्म लेकर असमर्थ अनेक दुःख भोगता हैं बालकपनके दुःख भोग कर जवानी में काम से विकल क्रमसे वृद्ध होकर मरजाता है भोगस्थान स्थूल शरीर इसके अस्ति १ जायते २ वर्धते ३ विपरिणयते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६ ये षट भेद हैं– यह स्थूल वर्णन किया है ।

श्लो०–सूक्ष्मशरीरं–अपंचीकृतैतानिभूतानिपंचतथाज्ञानकर्मेन्दियाण्येवयत्र ॥ पुनःपंचप्राणामनोबुद्धियुग्मंभवेत्सप्तदिग्भ्यश्चसूक्ष्मंशरीरम् ॥

भाषा०–बिना पंची कारण के पंच महाभूत पृथ्वी जल तेज वायु आकाश, ५ पांच ज्ञानेन्द्री श्रोत्र, त्वचा, नेत्र जिव्हा, नासिका यहां श्रोत्र का विषय शब्द देवता दिशा। त्वचा का विषय स्पर्श देवता वायु। नेत्र का विषय रूप देवता सूर्य। जिव्हा का विषय रस देवता वरुण। नासिका विषय गंध देवता अश्वनीकुमार। कर्मेन्द्री- वाणी हाथ पांव गुदा लिंग इन्द्री है तहां वाणीका विषय भाषण देवता अग्नि, हाथ का विषय ग्रहण करना देवताइन्द्र। पाद का विषय चलना देवता विष्णु।

गुदा का विषय मल त्याग देवता मृत्यु। लिंग का विषय भोग आनंद देव प्रजापति ब्रह्मा।

कारणदेहं–अनाद्यविद्यारूपंयदनिर्वाच्यमकारणम्। अज्ञानंसत्स्व रूपस्यनिर्विकल्पंहिकारणम्॥

भा०–अकथनीय अनादि अविद्या का रूप स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों का कारण मात्र सत् अपने रूप का जिसमें ज्ञान नहीं निर्विकल्प रूपवाला कारण शरीर है॥ यह तीनों शरीरों से आत्मा पृथक् है।

श्लो०–जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनामवस्थानांत्रिकंशुभम्॥ आभ्यःपरंतु रीयाख्यंब्रह्मात्मानं वदन्तिवै॥ १

भाषा–जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था हैं, इनसे परे चौथा ब्रह्म आत्मा कहा जाता है॥ श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्री के शब्दादि विषय का पूरा ज्ञान हो वह जाग्रत् अवस्था है स्थूल शरीराभिमानीआत्मा विश्व वैश्वानर कहाजाता है १॥जाग्रत अवस्था में जो कुछ देखा सुना है उसी से जनित वासना से निद्रा समय में जो प्रपंच प्रतीत हो वह स्वप्नावस्था है, तहां सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्मा तैजस कहा जाता है॥ २॥ गाढ़ निद्रा प्राप्त कुछभी ज्ञान नहीं रहना केवल जागने पर कहता है कि मुझे अच्छी निद्रा आई है यह सुषुप्ति अवस्था है यहां कारण शरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ कहा जाता है॥ ३॥

श्लो०–पंचकोषाइमेभोक्ताश्चान्नप्राणमनोमयाः॥ विज्ञानानन्दयु ग्मंवैशरीरत्रिषुनित्यशः॥ २

भाषा–अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय ये

पंचकोश में स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर होते हैं तहांपर अन्न रस से पैदा होकर अन्न ही रस से बढ़कर अन्नरूप पृथवी लय हो वह स्थूल देह अन्नमय कोष है यहां जाग्रत अवस्था है ॥ १ ॥ पांचो प्राण अपान व्यान उदान समान पांच कर्मेन्द्री बाणी हाथ पैर गुदा लिंग ये दशो प्राणमयं कोश कहा जाता है। पांच ज्ञानेन्द्री, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासिका, और मन मिलके मनोमय कोश है ॥ ३ ॥ पांचज्ञानेद्री, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिव्हा, नासिका, और बुद्धि मिलके विज्ञानमय कोश है ॥४॥ प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था के हैं ॥

ऐसे कारण शरीर वाली अविद्या में मलीन सत्व प्रियादि वृत्ति सहित सत् आनन्दमय कोश है इन पांचो कोशों में मेरा देह मेरे प्राण मेरी इन्द्री मेरा मन मेरी बुद्धि मेरा आनन्द इत्यादि मेरे से भिन्न मेरा ज्ञान करनेवाला आत्मा भिन्न हैं पञ्च कोश आत्मा नहीं है।

श्लो०–प्रियमोदप्रमोदाश्चवृत्तयस्त्रिविधामताः ॥ प्रियवस्तु स्मृतिसंमेलभोगाद्विजनिताश्रताः॥

भाषा–प्रिय, मोद, प्रमोद, ये तीन वृत्तियां हैं तहां प्यारी वस्तु के मिलने का स्मरण करके सुख देनेवाली प्रिय वृत्ति है,१प्रिय वस्तु के मिलने से सुख देनेवाली मोद वृत्ति है २ और प्रिय वस्तु को मिलकर भोगने से सुख देनेवाली प्रमोद वृत्ति है ॥३॥

श्लो०ज्ञानंबिनाह्यनात्मत्वंननश्यतिकदाचन। तद्ज्ञानसाधनंकार्यं बुधैरुक्तंचतुर्विधम् ॥१॥ विवेकत्वंविरागत्वंशमादित्वंमुमुक्षुता।

कर्तव्यानिप्रयत्नेनबुद्धिमद्भिर्मुमुक्षुभिः ॥
भाषा–ज्ञान के बिना अनात्मापन कभी नाश नहीं होता है। इससे ज्ञानका साधन बुधों को अवश्य करना चाहिये यह ज्ञान का साधन चार प्रकार का है ॥१॥ विवेक विरागता शमादि मुमुक्षता ये चार साधन बुद्धिमान मुमुक्षू जनों से अवश्य करने योग्य हैं ॥ २ ॥ आत्मा नित्य है जगत अनित्य है यह विवेक है १ इस लोक और स्वर्ग आदि की भोग की इच्छा का लेश भी मनमें न रहना यह वैराग है ॥ २ ॥ शमादि में शम, दम, श्रद्धा, उपरम तितिक्षा समाधान ये षट् हैं तहां मनकी शांति शम है और इन्द्रियों को अपने २ विषय से रोकना दम है २ शास्त्र गुरु वाक्य में विश्वास रखना श्रद्धा है ३ स्वधर्म करके संसार से मन हटाना उपरम है ॥ ४॥ सुख दुःख जाड़ा गर्मी भूख प्यास आदि सहना तितिक्षा है ॥ ५ ॥ चित्त की एकाग्रता समाधान है ॥ ६ ॥ ये शमादि कहे गये, मेरी संसार से मुक्ति हो जावे ये मुमुक्षुता है ॥५॥
श्लो०–पंचकोशशरीरत्र्यवस्थातीतोनिरामयः ॥ सच्चिदानन्दरूपोऽयंसाक्षीचात्मानिगद्यते ॥ १५ ॥
भा०–पंच कोश, त्रिशरीर तीन अवस्था से पृथक निरामय सच्चिदानंद रूप, साक्षी यह आत्मा कहा जाता है ॥ १ ॥
श्लोक–श्रवणंमननंचैवनिदिध्यासनमेवच। धारणाध्यानकंचैवसमाधिःषट्साधनम् ॥ २॥
श्रवण, मनननिदिध्यासन, धारणा, ध्यान, समाधि ये ६ साधन आत्मा प्राप्ति के हैं ॥२॥ अद्वैत निरूपण वाले शास्त्र

सुनकर अद्वितीय ब्रह्म निरूपण समझना यह श्रवण है १ जीव ब्रह्म को भाग त्याग लक्षणा से अभेद हमेश चिंतवन करना मनन है ॥२॥ विजातीय भेद—मैं जीव हूं दुःखी पापी पुण्यात्मा अनेक कल्पना करना विजातीय भेद हैं॥ यह छोड़कर सजातीय भेद मैं ब्रह्म हूं साक्षीचेता केवल निर्गुण इत्यादि वेदांत वाक्यों से ब्रह्मात्मा का एकी भाव दृढ़ करना, निदिध्यासन है ॥३॥

आत्मा ब्रह्म है यह विचार अपनी वृति में सदैव निरोध करना—धारणा है ४ जीव ब्रह्म की एक भाव में स्थिति का नाम ध्यान है ॥५॥ जीव ब्रह्म एक भाव स्थिति में आत्मा जीव की विस्मृति—समाधि है॥ ६ ॥ तत्—त्वम्—असि इस पद में षट् भेद त्रिगुण अंतःकरण चतुष्टय तीन शरीर पंच कोश से बाहर तत है॥ त्वं—पद ब्रह्म के जिस देश में अविद्या भासक कूटस्थ आभास, और अविद्या ये तीनों का मेल एक भाव होना त्वं पद जीव है असिपद प्रकृति है तिसके दो भेद हैं विद्या और अविद्या—शुद्ध सत्वगुण युक्त माया है॥ मलीन सत्वगुण युक्त अविद्या है॥ ईश्वर—यह पद तत् पद का वाच्यर्थ है—शुद्ध ब्रह्म के जिस देश में शुद्ध माया का आभास जैसे स्फटिक मणि में लालिमा का भास ऐसे शुद्ध माया युक्त ब्रह्म का देश ईश्वर तत् पद है ब्रह्म—दोनों माया से रहित जो अधिष्ठान है वह लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म है॥

॥ भजन ख्याल लंगड़ी बहर खड़ी ॥

जिसने आत्म सुख लख पाया वो जगके सब सुख धूर लखै

जब देखो तब आपको अपने, माँहिं हजूर लखे ।।टेक।।
शुद्ध ब्रह्म ईश्वर औ जीव जीवेश्वर भेद बताया है ।
भेद अविद्या, अविद्या चेतन का समझाया है ।
रज तम सत्व सरूप अहं के, वेद ने भेद बताया है ।।
अहंकार के तमो अंश ने, पांचो तत्व बनाया है ।
इनमें ढूंढ़कर चलै जो आगे, आतम तत्व जरूर लखे ।।
जब देखो तब, आपको अपने माहिं हजूर लखें ।।१।।
ज्ञान इन्द्रियां पांच देवता, पांच सतोगुण से आये ।
कर्म इन्द्रियां पांच देवता, पांच रजोगुण से गाये ।।
इन्द्री सुरों के सत्व अंश से, अन्तःकरण प्रगट भाये ।
चित, मन, बुद्धी, अहं ये नाम ठाम से कहलाये ।।
करे खोज इनमें जो आतमसुख का सपने नहिं नूरलखे ।
जब देखै तब आपको अपने माहिं हजूर लखै ।।२।।
गुण रजसे भये पांच प्राण गिनती तिनकीये सुनोभाई ।
प्राण अपान समान व्यान औ उदान गति न्यारीगाई ।।
पांच भेद हैं और वायु के सुनो तिन्हें मन चितलाई ।
नाग कूर्म औ, कृकल धनंजय देवदत्त कहं समझाई ।
यहां भी ढूंढै सत सुखको, भूले में न उसका चूरलखे ।।
जब देखै तब, आपको अपने मांहिं हजूर लखै ।।३।।
पंच कोश हैं तीन देह उनसे वह रूप निराला है ।
तीन वृत्तियाँ, मोद प्रिय प्रमोद से भी आला है ।।
बिना ज्ञान दिल सन्दुक्चेका कभी न खुलता ताला है ।
मिले उसी को मेरहवां जिसपै नंद का लाला है ।

माधवराम कृष्ण पद रज को, जग सुख सतसुख मूर लखै।
जब देखै तब आपको अपने माहिं हजूर लखै ॥
तीन देह वर्ण० दा०—विचार मेरे प्यारे साधन है सार विचार।
मै हौं कौन कहां से आया, कैसे ये जगत वजार॥ वजार मेरे०
पंच भूत स्थूल देह यह, दुख मय झूठ असार॥
यह सो मेरी कौन सगाई, असत दुःख जड़ छार॥ है छारमेरेप्यारे
दश इन्द्री औ पंच प्राण तहं मन बुधि मिले प्रचार।
सत्रह तत्व को सूक्ष्म देह है हम नहिं ये निरधार॥ निर० मेरे०
कारण मूल अविद्या सबको, कारण सहित विकार।
तीसर तन यह हैं हम नाहीं, समझ होय भवपार॥ है पार०॥
मुझमें त्रिधा उपाधि नहीं है, सकल असत तकरार।
माधोराम वह नाम रूप बिन, निर्गुण हूं निराकार॥ निराकार०
तीन अवस्था व० भजन—अवस्था तीन में हम नाहीं॥
द्वंदातीत द्वैत बिन समरत हैं अद्वैत सदाहीं।
विश्व भाग जाग्रत सुख ब्रह्मा, रजो गुण बस त्रिय माहीं॥
स्थूल देह वैखरी है वाणी, भोग प्रतक्ष लखाहीं॥ अवस्था०
स्वप्न अवस्था सूक्ष्म भोग जहं, मध्यमा वाच कहाहीं।
विष्णु देव सतोगुण जानो, आत्मा से बिलगाहीं॥ अवस्था०
प्राज्ञ सुषुप्ति भोग तहं आनंद, रुद्र देव बसि जाहीं।
तम अतीत पश्यंतीवाणी, सुखसोये अतलाही॥ अवस्था०॥
सबसे अलग रूप है हमरो, सबमें सदा समाहीं॥
माधोराम तुरीया साक्षी, वेद कहैंहम काहीं। अवस्था०
पंचकोश भजन—आत्मा पंच कोश परे जान।

पंचकोश को गुने आत्मा, सोहैं निपट नदान ॥ आत्मा०
अन्न रचित तन घट विकारमय, अन्नकोश परमान ।
रजो वीर्य पितु मातु बनायो, तन स्थूल महान ॥ आत्मा०
सूक्ष्म देह में तीन कोश है, प्रान मनो विज्ञान ।
पंचप्राण कर्मेन्द्री पांचो, कोश बनो है प्रान ॥ आत्मा०
मन कर्मेन्द्री पांचो मिलिकै, मनोमय कोश बखान ।
बुधि ज्ञानेन्द्रीं पाँच मिली सब, कोश बनै विज्ञान ॥ आत्मा०
कारण देह अज्ञानमयी मिलि, आनंद कोश मिलान ।
माधोराम पंचकोशहु से, आत्म अलग पहिचान ॥ आत्मा०

सत्‌चित् आनंद ।

भजन–अपने मन से विचारो, अनुभव । अनुभव बिना पार लागन को । मिलै न कोई सहारो ॥ विचारो० ॥
वेद निरूपण करें ब्रह्म को, सतगुरु हू निरधारो ।
सत चित आनंद ब्रह्म तुम्ही हो, यह निश्चय उरधारो ॥ विचारो०
सत् है कौन २ चित् कहिये, आनँद कौन अपारो ।
ये सब अर्थ आपमें मिलिहैं, समझ बूझि भ्रम टारो ॥ विचारो०
त्रिकाल में सत् सो सत् कहिये, चिद् ज्ञाता ये धारो ।
कबहू अप्रिय होत आप नहिं, आनंद घन सुखसारो ॥ विचारो०
तीन विशेषण जौन ब्रह्म के, अपने माहिं निहारो ।
माधोराम यह आत्म ब्रह्म हैं, भ्रम अज्ञान पछारो ॥ विचारो०

वाच्य अर्थ ।

भजन–करो सत गुरु को नित सत्संग, तजदो सकल कुसंग ।
तत्वमसो को अर्थ ब्रह्मवित्, लहि मज्जहु सत गंग ।

तत् पद ईश जीव त्वं पद है, असि प्रकृती अज रंग ॥ करो०
तत् त्वं पद को वाच्य अर्थ तजि, लक्ष्य को पकड़ो ढंग ।
वाच्य उपाधी ईश्वर जीवहु, सर्ववित् अज्ञ प्रसंग ॥ करो०
लक्ष्य अर्थ चेतन सम दोऊ, सत् आनंद उमंग ।
त्वं है व्यष्टिदेह जग तत् पद, समष्टि वाचक अंग ॥ करो०
भाग त्याग से वाच्य अर्थ तजि, गहि ले लक्ष्य असंग ।
माधोराम लक्ष्य ब्रह्महि हम, विजय पाय जग जंग ॥ करो०

ब्रह्मरूप ठुमरी—लखो अब ब्रह्म रूप सामान ॥
अस्ति भाति प्रिय सदा ब्रह्म है, तहँ नहिं घट पट ज्ञान ।
अन्तःकरण विशेष उपाधी, तव विशेष को भान ॥ लखो०
तहँ दृष्टांत धूप रवि सब पर, पड़ै न अग्नि उठान ।
आतश शीशा धरो बीच में, जारै तृण औ पान ॥ लखो०
त्यों रवि धूप समान ब्रह्म है, शीशा बुद्धि मिलान ।
दहन दुःख सुखभान समझलो, नाम रूप पहिंचान ॥ लखो०
निरुपाधी सामान ब्रह्म है, सत् चित् आनंद ज्ञान ।
माधवराम सतगहु समानता, ध्याता ध्येयन ध्यान ॥ लखो०

सप्त भूमिका ठुमरी—भूमिका सात ज्ञान की जान ।
शुभ इच्छा सुविचारणा दूजी, तनु मानसा प्रमान ।
सत्वापत्ति असंशक्ति पुनि, पदार्थभावि बखान॥ भूमिका०
तुरिया सतवी गुनौ भूमिका, आतम ब्रह्म मिलान ।
जग सुख तजि वेदांत श्रवण जहं, शुभ इच्छा पहिंचान ॥ भू०
हम हैं कौन जगत यह किससे, सुविचारणा मिलान ।
तजि विक्षेपहि अंतरमुख मन, तनु मानसा ये ठान ॥ भू०

अहं ब्रह्म दूजा नहि निश्चय, सत्वापती भान ।
द्वैत भान में नहिं अशक्त हो, असंशक्ति की शान ॥ भू०
चित से होय अभाव वस्तु को, पदार्था-भावि है गान।
भावअभाव जहां कुछ नाहीं, तुरिया हैं नहिं आन ॥ भू०
जाग्रत में है तीन भूमिका, चौथि स्वप्न को थान।
तीन सुपुप्ति ध्येय ध्याता नहिं, माधोराम धर ध्यान ॥ भू०
इति श्री वेदान्त शिक्षा सर्वस्वे आत्मानात्म नि० भजन
सप्तक नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

आत्मानात्मविवेक विवरण नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्लोक–हरिः ॐ जतूनांनरजन्मदुर्लभमतःपुस्त्वंततोविप्रतातस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरताविद्वत्वमस्मात्परम् ॥ आत्मानात्मविवेचनंस्वनुभवोब्रह्मात्मनासंस्थितिर्मुक्तिर्नोशत जन्मकोटिसुकृतैःपुण्यैर्विनालभ्यते ॥ १

भा०-इस परमेश्वर की सृष्टि में पैदा हुए जीव को मनुष्य देह दुर्लभ है 'नृदेहमाद्यंसुलभंसुदुर्लभमिति' मनुष्य में भी ब्राह्मण देह उसमें भी विद्याप्राप्ति तिसमें आत्मा अनात्मा का विचार फिर अनुभव तहां आत्मा ब्रह्म की एकता दुर्लभ है शत शब्द असंख्य संज्ञावाला है बहुत जन्म बीत गये मुक्ति नहीं पाई 'गीता' बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मांप्रपद्यते अन्यत् अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥ बहुत

जन्म के अन्त में ज्ञानवान् मुझे पाता है' श्री कृष्णजी गीता में कहते हैं अनेक जन्म में सिद्ध होकर परम गति पाता है इस से एक जन्म में मुक्त होना कठिन है यत्न करने से प्रथम ज्ञान की सात भूमिका प्राप्त होती हैं उनका वर्णन योग वशिष्ठ तथा मधुसूदनी टीका गीता की व्याख्या में है संक्षेप से आगे कहते हैं।

श्लो०—'ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्याप्रथमापरिकीर्तिता ॥ विचारणा द्वितीयास्यात्तृतीयातनुमानसा ॥ १ ॥ सत्त्वापत्तिश्चतुर्थीस्यात्त तोऽसंसक्तिनामिका ॥ पदार्थाभाविनीषष्ठीसप्तमीतुर्यगास्मृता ॥२ इति ॥ तत्रनित्यानित्यवस्तुविवेकादिपुरःसराफलपर्यवसायिनी मोक्षेच्छाप्रथमा ॥१॥ ततोगुरुमुपसृत्यवेदांतवाक्यविचारःश्रवण मननात्मिकाद्वितीया ॥२॥ ततोनिदिध्यासनाभ्यासेनमनसए काग्रतयासूक्ष्मवस्तुग्रहणयोग्यत्वंतृतीया ॥३॥ एतद्भूमिकात्रयं साधनरूपंजाग्रदवस्थोच्यतेयोगिभिः अभेदेनजगतोमानात् ॥ तदुक्तं 'भूमिकात्रितयंत्वेतद्राम जाग्रदितिस्थितम् ॥ यथावद्भेद बुद्ध्येदंजगज्जाग्रतिदृश्यते' ॥ इति ॥ ततोवेदांतवाक्यान्नि र्विकल्पकोब्रह्मात्मैकसाक्षात्कारश्चतुर्थीभूमिकाफलरूपासत्त्वापत्तिः स्वप्नावस्थोच्यते ॥४॥ सर्वस्यापिजगतोमिथ्यात्वेनस्फुरणात् ॥ तदुक्तं अद्वैतेस्थैर्यमायातेद्वैतेप्रशममागते ॥ पश्यन्तिस्वप्नव ल्लोकंचतुर्थीभूमिकामिताः ॥ इति ॥ सोयंचतुर्थभूमिंप्राप्तोयोगी ब्रह्मविदुच्यते ॥ पंचमी षष्ठीसप्तम्यस्तुभूमिकाजीवन्मुक्तेरेवावा न्तरभेदाः ॥ तत्रसविकल्पकसमाध्यभ्यासेननिरुद्धेमानसिया निर्विकल्पकसमाध्यवस्थासाऽसंसक्तिरितिसुषुप्तिरितिचोच्यते ॥

ततःस्वयमेवव्युत्थानांत् ॥ सोयंयोगीब्रह्मविद्वरः ॥५ ततस्तदभ्यासपरिपाकेनयाचिरकालावस्थायिनीसापदार्थभाविनीगाढ़ सुषुप्तिरितिचोच्यते ॥ ततःस्वयमनुत्थितस्ययोगिनःपरमप्रयत्नेनैवव्युत्थानात्सोऽयंब्रह्मविद्वरीयान् ॥ उक्तं हिपंचमींभूमिकामेत्यसुषुप्तिपदनामिकाम् ॥ षष्ठींगाढसुषुप्त्याख्यांक्रमात्पततिभूमिकाम् ॥ ॥ इति ॥ ६ ॥ यस्यास्तुसमाध्यवस्थायांनस्वतोनपरतोव्युत्थितोभवतिसर्वथभेददर्शनाभावात्, किंतुसर्वदातन्मयएवस्वप्रयत्नमंतरेणैवपरमेश्वरप्रेरितप्राणवायुवशादन्यैर्निर्वाह्यमानदैहिकव्यवहारःपरिपूर्णपरमानन्दघनएवसर्वतस्तिष्ठतिसासप्तमीतुरीयावस्था ॥७॥ तांप्राप्तोब्रह्मविद्वरिष्ठइत्युच्यते ॥ उक्तं हिषष्ठ्यांभूम्यामसौस्थित्वासप्तमीभूमिमाप्नुयात् ॥ किंचिदेवैषसम्पन्नस्त्वथैवैषनकिंचन ॥ विदेहमुक्ततातूक्तासप्तमीयोगभूमिका ॥ अगम्यावचसांशांतायासीमायोगभूमिषु ॥ इतियामधिकृत्यश्रीमद्भागवतेस्मर्यते देहंचनश्वरमवस्थितमुत्थितंवासिद्धोनपश्यतियतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथदैववशादपेतंवासोयथापरिकृतंमदिरामदान्धः ॥ १ ॥ देहोऽपिदैववशगःखलुकर्मयावत्स्वारम्भकंप्रतिसमीक्षतएवसासुः ॥ तंसप्रपंचमधिरूढसमाधियोगःस्वाप्नंपुनर्नभजतेप्रतिबुद्धवस्तुः ॥ इति ॥ श्रुतिश्चतद्यथाऽहिनिर्ल्वयिनीवल्मीकेमृताप्रत्यस्ताशयीतैवमेवेदंशरीरंशेतेऽथायमशरीरोमृतःप्राणोब्रह्मैवतेजएव ॥ इति ॥ तत्रायंसंग्रहः—चतुर्थीभूमिकाज्ञानंतिस्रःस्युःसाधनंपुरा ॥ जीवन्मुक्तेरवस्थास्तुपरास्तिस्रःप्रकीर्तिता ॥ अत्रप्रथमभूमित्रयमारूढोऽज्ञोऽपिनकर्माधिकारीकिंपुनस्तत्त्वज्ञानीतद्दिशिष्ठोजीवन्मुक्तोवेत्यभिप्रायः ॥

भाषा—शुभ इक्षा प्रथम ज्ञान भूमि है सुविचरणा दूसरी है। तनुमानसा तीसरी, सत्वापत्ति चतुर्थ, असंशक्ति पांचवीं पदार्था भावनी छठवीं तुर्यगा सातवीं भूमिका है ॥ तहां नित्य अनित्य वस्तु के ज्ञानवाली फल इच्छा रहित मुक्ति की इच्छा वाली पहिली शुभेच्छा है ॥ १ ॥ फिर गुरु समीप जाकर वेदांत वाक्य का विचार का श्रवण और मनन करना ऐसी दूसरी भूमिका विचारणा है ॥ २ ॥ तब निदध्यासन अभ्यास से मनकी एकग्रता से सूक्ष्म वस्तु ग्रहणयोग तीसरी भूमिका तनु मानसा है ३ यह तीनों भूमिका साधन रूप जगत भान होने से जाग्रत अवस्था की हैं। वशिष्ठजी रामचन्द्र से कहते हैं हे राम यह तीनो भूमिका जाग्रत अवस्था की हैं इनमें जाग्रत का ज्ञान होता है ॥ आगे वेदांत वाक्य से निर्विकल्प ब्रह्म आत्मा की एकता का साक्षात्कार वाली चौथी भूमिका सत्वापत्ति है यह स्वप्नावस्था है। सब जगत झूठ भान होता है कहा है अद्वैत में थिर होने से द्वैत शांत हो जाता है स्वप्न की भांति संसार दीखता है इस चौथी भूमिका को प्राप्त हुआ योगी ब्रह्मवित् कहा जाता है ॥ पांचवीं छठवीं सातवीं ये तीन भूमिका जीवन मुक्ति के भेद हैं—तहाँ सवि कल्प समाधी के अभ्यास से निरोधित मन में निर्विकल्प समाधीवाली असंशक्ति पांचवीं भूमिका सुषुप्ति कही जाती है तहां स्वयं उत्थान से योगी ब्रह्म विद्वर कहलाता है ५ फिर उसके अभ्यास परिपक होने से चिरकाल स्थितिवाली पदार्थभाविनी गहरी सुषुप्ती छठवीं भूमिका है तहां योगी

स्वयं नहीं उठता है बड़े यत्न से उत्थान होता है इससे ब्रह्म वित् वरीयान कहलाता है कहा है पांचवी सुषुप्ति वाली और छठवीं गाढ़ सुषुप्तिवाली भूमिका है ६ जिस समाधि अवस्था में न आपसे न और से उत्थान होता है अभेद दर्शन नहीं रहता है विना यत्न के ईश्वर प्रेरणा से प्राण की स्थिति और शरीर का निर्वाह होता है वह परिपूर्ण परमानंद घन रहता है यह सातवीं भूमिका तुरीया है ॥ ७ ॥ इसको प्राप्त योगी ब्रह्म वित् वरिष्ठ कहलाता है छठवीं से सातवीं भूमिका होती है वहां कुछ भान नहीं बिदेह मुक्त सातवीं भूमिका है अकथनीय योग सीमा का अन्त श्रीमद्भागवत में योगी निज सरूप को पाकर सिद्ध देह को उठते बैठते नहीं जानता है प्रारब्ध से देह निर्वाह होता है जैसे मदिरा मदांध को वस्त्र के सँभाल का होश नहीं रहता, देह अपने प्रारब्ध को पूरा कर गिर जाता है वह ब्रह्म रूप हो देह नहीं लेता है जैसे सांप केचली त्यागता है प्रथम की तीन अवस्था साधन की हैं चौथी ज्ञान भूमि है ॥ ५ ६ ७ जीवन मुक्ति की हैं ॥

भूमिका—नित्यानित्यपदार्थानांविवेकादिपुरःसरा ॥ मोक्षेपर्यवसायीचशुभेच्छाप्रथमास्मृता ॥१॥ शुभेच्छाप्रसिद्धाहिज्ञानस्यभूमिहिंचाद्याभदेगत्रसत्कर्मवांछाव्रतंतीर्थदानंतथाचात्मज्ञानंहरेः कीर्तिगानंविधत्तेजनाय ॥१॥

भाषा—नित्य और अनित्य पदार्थों के बिवेक वाली मुक्ति की ओर ले चलनेवाली शुभेच्छा पहिली भूमिका है इसके होने पर व्रत तीर्थ दान हरि भजन आत्मज्ञान की इच्छा से

होते हैं यह शुभेच्छा है यह पुष्ट होने से और सब भूमिका प्राप्त होती है ॥१॥

भूमिः—ब्रह्मनिष्ठंगुरुंप्राप्तोऽतोवेदान्तविचारकृत् ॥ सुविचारणा द्वितीयास्याच्छ्रोतृमनननात्मिका ॥ २ ॥ ज्ञानस्यभूमिःसुविचारणेर्यभवेद्द्वितीयासुविचारदात्री ॥ केनप्रकारेणगतिंप्रयद्ये दिवानिशंशोचतिवैमुमुक्षुः ॥२॥

भा०—ब्रह्मनिष्ठ गुरु से मिलकर वेदांत विचार करै श्रवण मननवाली दूसरी भूमिका सुविचारणा है ॥ ज्ञान की दूसरी भूमिका सुविचारणा है इसमें दिन राति मुमुक्षू शोचता है कैसे मुक्त होजाऊं ऐसे सुन्दर विचार देनेवाली यह सुविचारणा है ॥ विचार विना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है इससे विचार का विवरण करते हैं ॥

श्लोक—कोवागुरुर्योहिहितोपदेष्टाशिष्यस्तुकोवागुरुभक्तएव कोदीर्घरोगोभवएवसाधोकिमौषधंतस्यविचारएव ॥ १ ॥ विचारहीनस्यवनेऽपिबंधनंनवैसुखंत्यक्तगृहस्यकाऽपि गृहेरतस्याऽपिनरस्यमुक्तिःकृतेविचारेप्रभवेन्नितांतम् ॥ २ ॥

श्लोक—द्वितीयाभूमिकाज्ञेयाज्ञानस्यसुविचारणा ॥
सुविचारेधृतेसाधोगतिरग्रेभवष्यिति ॥ ३ ॥
कदाऽहंस्वरूपंस्वकीयंलभेयंसदामानसेयस्यचैषोविचारः ॥
अवश्यंविमुक्तेःसुखंप्राप्तिरस्यभवेत्क्लेशदुःखैर्वसंसारनाशः ४

भा०—गुरु को है जो हित की बात उपदेश करै शिष्य को है जो गुरु भक्त हो। बड़ा रोग क्या है यह संसार ही है, इसकी औषधि क्या है, विचार है ॥ १ ॥ विचार हीन पुरुष

को वनमें वंधन है घर छोड़ने पर भी सुख नहीं होता है विचार करने से गृहस्थी में लगे हुये मनुष्य की मुक्ति होती है ॥ ज्ञान की दूसरी भूमिका सुविचारणा है सुविचार करने से आगे मुक्ति होगी ॥ ३ ॥ कब हम अपने स्वरूप को पावेंगे जिसके हृदय में यह विचार होता है उसको अवश्य मुक्ति सुख मिलता है दुखदाई संसार नाश होजाता है ॥ ४ ॥

श्लोक–निदिध्यासनअभ्यासाचित्तैकाग्रतयाततः ॥ ग्रहणात्सूक्ष्म वस्तूनांतृतीयातनुमानसा ॥ तृतीयभूमिस्तनुमानसेयंमनस्तुया सूक्ष्मतरंकरोति ॥ नवस्तुतोऽदोविषयान्नतनोतिसूक्ष्मेविचारेलय मेतिनित्यम् ॥२॥

भाषा–निदिध्यासन अभ्यास से चित्त की ऐकाग्रता होती है सूक्ष्म वस्तु का ग्रहण होने से तृतीय भूमिका तनु मानसा कही गई है ॥ १ ॥ इस तनु मानसा भूमिका में मन वाहरी जाल छोड़ सूक्ष्म रूप हो जाता है वाहरी विषय नहीं चाहता है आत्म विचार में लय रहता है ॥ २ ॥

श्लो०-जागृदवस्थाविज्ञेयाह्येतासुत्रिषुभूमिषु ॥ भेदबुद्ध्याजगद्दृश्यंदृश्यतेचासुनित्यशः ॥ १ ॥ ब्रह्मात्मैकत्वनिष्ठायास्वप्नाव स्थाभिमानिनी ॥ सत्वापत्तिर्हिविज्ञेयाचतुर्थीज्ञानभूमिका ॥ २ ॥ अद्वैतेहृदिचायातेशांतद्वैतेविमोहदे ॥ ब्रह्मविद्भवतेज्ञानीस्वप्नव ज्जगतःस्थितिः ॥ ३ ॥

श्लो०–सत्वापतिश्चतुर्थीत्रिगुणविरहितंब्रह्मशुद्धं विधत्तेसत्वंग्रज्जी वकोशंजननमरणदंशोकमोहप्रदातृ ॥ तल्लक्ष्यार्थस्यप्राप्तौचल तियदिमनःशुद्धसत्वेप्रवृत्तंयद्वत्तीरेजलस्यप्रकटतरुमहींस्वप्नवद्वा

रिसत्यम् ॥

भा०—इन तीनों भूमिका में जागृत अवस्था जानो इनमें भेद बुद्धि और संसार दृष्टि रहती है ॥ १ ॥ ब्रह्म और आत्मा की एकता की निष्ठावाली स्वप्नावस्थाभिमानी ज्ञान की चौथी भूमिका सत्वापत्ति है ॥ २ ॥ अद्वैत हृदय में आने से विशेष मोह देनेवाला द्वैत शाँत हो जाने से ज्ञानी ब्रह्मवित् होता है जगत की स्थिति स्वप्न के समान रहती है ॥३॥ त्रिगुण से रहित सत्वापत्ति चौथी भूमिका शुद्धि ब्रह्म को धारण करती है सत्व जो जीवकोश जन्म मरण शोक मोह देनेवाला है उसके लक्ष्यार्थ में जब मन लगता है तब शुद्ध सत्व होजाता है जैसे समुद्र तट खड़ा हुआ पुरुष जब समुद्र को देखता है तो समुद्र जलाकार दीखता हैं कदाचित् मुंह फेर कर पीछे देखता है तो वृक्ष पृथ्वी आदि दिखाई देते हैं ऐसेही सत्वापत्ति चतुर्थ भूमिक्ता में प्राप्त ज्ञानी की ब्रह्माकार वृत्ति रहती है कभी बहिर वृत्ति होने से स्वप्न तुल्य संसार का भान होता है ब्रह्माकार वृत्ति का वर्णन आगे है ॥ ४ ॥

श्लो०—एकःशुद्धःस्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौगुणाश्रयः ॥
सर्वगोऽनावृतःसाक्षीनिरात्माह्यात्मनःप्रियः ॥ १ ॥

भा०—एक शुद्ध स्वयं ज्योति निर्गुण और गुणाश्रय वह है। सबमें प्राप्त नहीं ढका हुआ साक्षी आत्मा देह से पर है ॥ १ ॥ प्रति बोध क्रम को कहकर देह में अनुषंग भाव कहते हैं यह आत्मा देह से परे है उसके विलक्षणता के नव भेद हैं—देह बाल युवा जरादि भेद से अनेक रूप हैं आत्मा

सब में एक रूप है गीता में देहिनोऽस्मिन्यथादेहेकौमारंयौवनं जरा ॥ इत्यादि मलिन जन स्वगुण स्वकारण भूत गुणाश्रित परिछिन्न गृहादिक से आवृत दृश्य है इससे आत्मा से भिन्न आत्मा नहीं है आत्मा व्यापक होने से एक है सब गिनती की समाप्ति एक में है ऐसेही सब जीवों में पृथक् २ होता हुआ भी आत्मा एक है।

श्लो०–उदकपात्रगतश्चार्कोयथानानेवदृश्यते। पृथक्भूतेपुतद्ब्रह्मनानेहप्रतिपद्यते ॥ १ ॥ एकश्चाग्निःपृथक्काष्ठेविभिन्नइवदृश्यते। एवमात्मापरब्रह्मजीवेष्वेवपृथक् पृथक् ॥ २ ॥

भा०–बहुत से पात्रों में जल भर धूप में रखने से सब में न्यारा २ सूर्य दिखाई देता है इसी भांति अलग २ जीवों में एक ब्रह्म नाना रूप से दीखता है ॥१॥ जल पात्रों में सूर्य का बिंबही अनेक रूप भान होता है सूर्य एक है विकार रहित है ऐसेही अविद्या से अन्तःकरणों में सब जीवों में एक ब्रह्म न्यारा २ दीखता है उसमें कोई विकार नहीं है जीव को जो सुख दुःखादि भान होते हैं वह अपना रूप भूल गया है भ्रम से देहमयी समझ धोखे से दुखी होता है ॥ दूसरा दृष्टांत– जैसे एकही अग्नि सब काष्टों में पृथक् २ दीखता है ऐसेही एक आत्मा परब्रह्म सब जीवों में न्यारा २ दीखता है बिना साक्षात्कार के आत्मा विषय में फंसकर अनात्म तुल्य दीखता है शास्त्रो में यद्यपि कहा है आत्मा श्रोतव्यःमंतव्यःनिदिध्यासितव्यश्चेति ॥ आत्मा श्रवण योग्य है मनन योग्य है निदिध्यासन करने योग्य है इस वाक्य से आत्मा का अनुभव

होता है आंखो से नहीं दीखना है।
श्लो०—यथावेद्यु तेपुप्रकाशेपुचैकःप्रकाशोनचान्यःपृथक्तोविभाति ॥ तथासर्वभूतेषुशुद्धःपरात्मास्वयंज्योतिरेकोविभुर्भातिनित्यः ॥१॥ 'व्यासोक्तिः'—आत्मानित्योऽव्ययःशुद्धः एकः क्षेत्रज्ञआश्रयः ॥ अविक्रयःस्वदृग्हेतुर्व्यापकोऽसंग्यनावृतः ॥२॥
भापा-सब स्थल में बिजली की चमक में एक ही प्रकाश पृथक् २ प्रकाशित.है और नवीन अंग्रेजी बिजली के काच की कुप्पियों में न्यारी २ बिजली दीखतीहै परंतु वह एकही अंजन घर से बिजली के सूक्ष्म तारों से सब स्थलों में पहुंचती है इसको बिचार ला एक बिजली की रोशनी सब बिजली के प्रकाशों से और अंजनघर से मिली है और सब रोशनी उस एक से और अंजनघर से मिली है और अंजनघर का पूर्ण तेज सब कुपियों के प्रकाश और एक से मिलता है तो तीनों अंजनघर में सब बिजली में और एक बिजली के भीतर में मिला एकही तेज है केवल ऊपर की उपाधि न्यारी २ है इसी तरह एक जीव के भीतर का तेज जीव व्यष्टि और सब के भीतर का तेज ईश्वर समष्टि और अंजन रूप शुद्ध ब्रह्म भीतर से एक हैं ऊपर से जीव में अविद्या पराधीनता उपाधि है ईश्वर में माया स्वाधीनता उपाधि है शुद्ध ब्रह्म में शुद्धता भी उपाधि की सम्भावना है॥१॥ आत्मा नित्य अव्यय शुद्ध एक क्षेत्रज्ञ आश्रय अविकारी स्वयं द्रष्टा हेतु व्यापक असंगी बिना ढका हुआ है ॥२॥ यह आत्मज्ञान चौथी भूमिका में होता है॥
श्लो०—जीवन्मुक्तेःप्रभेदावैःपंचमीषष्ठिसप्तमीः ॥ सविकल्पसमा

धिस्थासुपुप्तिरितिचोच्यते ॥ १ ॥ स्वयमेवसमुत्थानादसंशक्तिस्तुपंचमी ॥ तस्यांमुमुक्षुःकुशलोब्रह्मविद्वरउच्यते ॥२॥

श्लो०–इयंपंचमीस्यादसंशक्तिभूमिःपदार्थेपुनोरागवैरागकंच॥ यथावालकःक्रीडकंवस्तुधत्तेनवैसंस्मरेत् यद्दिपृष्ठेस्थितंतत् ॥३॥

भाषा–जीवन्मुक्ति के भेद पांचवीं छठवीं सातवीं भूमिका हैं सविकल्प समाधि सुपुप्ति कही जाती है ॥१॥ तहां आपही उत्थान होने से पदार्थों में आशक्त न होने वाली यह असंशक्ति नाम पांचवीं भूमिका है इसमें मुमुक्षू ब्रह्मवित् वर कहलाता है जैसे सोते में संसार का भान नहीं होता है इसी तरह पांचवीं भूमिका वाले को जागृत में सुपुप्ति की भांति संसार भान होता है ॥२॥ इस पांचवीं भूमिका में पदार्थों में राग वैराग कुछ नहीं होता है । जैसे वालक के सामने खिलौने देखकर उनमें खेलता है पीठ पीछे होने से भूल जाता है ऐसेही इस श्रेष्ठज्ञानी को वालक की तरह वस्तु सन्मुख देखकर साधारण व्यवहार होता है पीछे कुछ स्मरण नहीं होता है

श्लो०–स्वयंनैवसमुत्थानादतियत्नेनचोत्थितः ॥
ब्रह्मवित्सुवरीयान्सःकथितोब्रह्मवादिभिः ॥ १ ॥
जीवन्मुक्तित्वमापन्नःपदार्थाभाविनींगतः ॥
ब्रह्मवेत्तावरीयान्सःषष्ठींभूमिंसमागतः ॥ २ ॥

पदार्थानांभावंहरतिखलुषष्ठीपृथविका वहिर्वृत्तिसर्वांहरति निजरूपंस्वसुखदा ॥ पदार्थाभावेयं कविवरविनीतैर्हिकथिता भवेज्जीवन्मुक्तःजननमृतिहीनोभुविनरः ॥३॥

भाषा–जिसका आत्माब्रह्म निष्ठा से आप नहीं उत्थान होता

है बड़े यत्न करने से उठता है उसको ब्रह्मवादी लोग ब्रह्मवेत्ताओं में वरीयान अति श्रेष्ठ कहते हैं ॥१॥ जीवन मुक्ति को प्राप्त पदार्थाभाविनी छठवीं भूमिका है इसमें ब्रह्मवेत्ता वरीयान् होता है ॥२॥ यह पदार्थाभाविनी भूमिका सब पदार्थों का भाव हर लेती है बाहरी, वृत्ति हरकर आत्म सुख देती है इस में जन्म मरण रहित जीव जीवन मुक्त होता है ॥३॥ जीवन्मुक्त का लक्षण फिर कहेंगे।

श्लो०—स्वतोनपरतोवाऽपिसमाधेर्व्युत्थितांव्रजेत् ॥
ब्रह्मवित्सुवरिष्ठःसः तुरीयासप्तमींगतः ॥१॥
प्रारब्धभोगादेहस्य निर्वाहोभवतेनिशम् ॥
मदोन्मत्तस्यवस्त्रादौ स्मृतिर्नैवकदाचन ॥२॥
सःस्वल्पेनैवकालेन देहंत्यजतिचात्मवान् ॥
निर्विशेषोब्रह्मरूपो जन्म मृत्युविवर्जितः ॥३॥
भवेद्यातुरीयाह्यवस्थाहिशास्त्रेऽत्वियंसप्तमीभूमिकैवप्रसिद्धा ॥
नवैतत्रज्ञातानज्ञानंनज्ञेयंपरब्रह्मरूपोऽस्मिजीवत्वनाशः ॥४॥

भाषा—जो आप से न और से भी समाधि से नहीं उत्थान हो तदाकार हो बना रहे वह ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ट अति श्रेष्ठ है यह चौथी तुरीया सातवीं भूमिका है ॥१॥ प्रारब्ध भोग से देह का निर्वाह हमेश होता है मदिरामत्त की तरह वस्त्र रूप देह की कभी भी स्मृति नहीं रहती है ॥२॥ वह थोड़े ही काल में देह त्याग देता है जन्म मृति से रहित निर्विशेश होकर ब्रह्म रूप हो जाता है ॥३॥ तुरीया अवस्था शास्त्र में सप्तमी भूमिका कही गई है तहां ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय कुछ नहीं है जीवपन खोकर

ब्रह्म रूप होता है ॥४॥

भजन—सात भूमिका जान ज्ञान की ॥ टेक ॥

शुभ इच्छा है प्रथम भूमिका, अस रुचि हिये उठान ।
परब्रह्म आत्मा को जानै, तजिकै सकल जहान ॥१॥
सुविचारणा द्वितीय भूमिका, तहं अस करतब ठान ।
नित्य अनित्य बिचार विचारै, करै नित्य पहिचान ॥२॥
तनु मानसा तृतीय भूमिका, तहं पर ऐस मिजान ।
बाहर विषय जाल तजिकै मन, सूक्ष्मरूप अनुमान ॥३॥
सत्वापत्ति चतुर्थ भूमिका, तहां आत्म को ज्ञान ।
तीन अवस्था जागृत जग तजि, स्वप्नरूप जग भान ॥४॥
असंशक्ति पांचवी भूमिका, तहं न कहूं लपटान ।
ब्रह्मवेत्ता वर कहलावै, सुषुप्ति भेद बखान ॥ ५ ॥
छठी पदार्था भावि भूमिका, परसे हो उत्थान ।
जीवन्मुक्ति दशा हो तनकी, भाग भोग गुजरान ॥६॥
सतवीं तुरीय भूमिका जानो, बिदेह मुक्ती शान ।
माधवराम ब्रह्ममय ह्वै यह, रूप में रूप समान ॥७॥

इति श्री विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे आत्मानात्म विवेके सप्त भूमिका विवरण नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

जीवन् मुक्त लक्षण नाम पंचदशोऽध्यायः ।

श्लो०—जीवन्मुक्तोनामस्वस्वरूपाखण्डब्रह्मज्ञानेनतदज्ञानवाधन द्वारास्वस्वरूपाखण्डब्रह्मणिसाक्षात्कृतेमतिअज्ञानतत्कार्यसंचित कर्मसंशयविपर्य्ययादीनामपि वाधितत्वादखिलवंधरहितोब्रह्म निष्ठः ॥ भिद्यतेहृदयग्रंथिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्तेचास्य कर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥

भाषा—जीवन मुक्त अपने रूप में अखंड ब्रह्म ज्ञान से अखंड अखंड ब्रह्म में साक्षात्कार होने पर संचितकर्म संसय विपर्यय के बंध रहितब्रह्म निष्ठ जीवन मुक्त होता है हृदय की गांठ भेदन हो जाती है सब संदेह छूट जाते हैं इस जीव के परमात्मा लक्ष्य होने पर कर्म क्षीण होजाते हैं ॥

श्लो०—सचक्षुरचक्षुरिवसकर्णोऽकर्णइवसमनाअमनाइवसप्राणोऽप्राणइव इत्यादि श्रुतेः ॥ उक्तञ्च सुषुप्तवज्जाग्रतियोनपश्यति द्वयञ्चपश्यन्नपिचाद्वयत्वतः ॥ तथाचकुर्वन्नपिनिष्क्रियश्चयःस आत्मविज्ञान्यइतीहनिश्चयः इति उपदेशसाहस्री ॥

भाषा—वह जीवन मुक्त नेत्र वाला होकर विना नेत्र वाला कर्ण वाला होकर विना कान वाला, मन वाला होकर वेमन प्राण वाला होकर विना प्राण वाला होकर रहता है कहा है सुषुप्तकी तरह जागते में कुछ नहीं देखता है दोनों को देखता हुआ अद्वैत रूप हो नहीं देखता है करता हुआ अकर्ता है ऐसा आत्म ज्ञानी जीवन्मुक्त है ॥

तदुक्त—उत्पन्नात्मावबोधस्यत्वद्वेष्टृत्वादयोगुणाः ॥ अयत्नतो भवन्त्यस्यनतुसाधनरूपिणः ॥ नैष्का० सिद्धि ॥

भाषा—आत्म बोध उत्पन्न हुये जीव के निर्वैर आदि गुण विना यत्न हो जाते हैं साधन रूप वाले जीव के नहीं होते हैं ॥

स०-ब्रह्म सरूप को प्राप्त भयो, क्रियमाण गुमान न नेकहु लावै
बंधन हीन छुटी हिय गांठि, गयो सन्देह स्वरूप लखावै ॥
इन्द्रिय देह औ प्राण के करतब, भाग्य अधीन ह्वै भोगत जावै।
माधव इन्द्र को जाल लखै, यह दृश्य सो जीवन्मुक्त कहावै ॥

स०-नैन अनैन सकान अकान, मनो मनहीन जी प्रान न लावै।
जागत है रहे सोवत सो न लखै, लखि आतम ज्ञान जो पावै॥
ज्ञान विना नर कूकर जानिये, भक्ष्य अभक्ष्य विचारि न खावै।
माधवराम सुनेम स्वभाविक, नाहिं कुचाल सो मुक्त कहावै ॥

स०-ज्ञान उद जव होत हिये, सव बैर छुटै समता उर आवै।
भोगत भोग जो भाग भोगावत, सोउ सुकर्म कुकर्म न लावै ॥
होत सुकर्म स्वभावहिते रुचि, नाहि अनंद, सुब्रह्म लखावै।
माधवराम सरूप वनै जन, मुक्त सो जीवन्मुक्त कहावै ॥

श्लो०—नसुखायसुखंयस्यदुःखंदुखाययस्यनो ॥
अंतर्मुखमतेर्नित्यंसमुक्तइतिकथ्यते ॥ १ ॥
यस्यनस्फुरतिप्रज्ञाचिद्व्योमन्यचलस्थितेः ॥
प्रभूतेष्विवभोगेषुसमुक्तइतिकथ्यते ॥ २ ॥

दो०—जेहिं सुख सुख नहिं लखि परै, दुःखहि दुःख न जान।
अंतर मुख मति नित्य हीं, मुक्त अहे हिय मान॥ १ ॥
फुरति बुद्धि नहिं जाहकी, चिद्द अकाश थितिपाय ।

सब भोगादिक सम गुने, सोई मुक्त कहाय ॥

श्लो०-चिन्मात्रात्मनिविश्रांतं यस्यचित्तमचंचलम् ॥
तत्रैवरतिमायातं सजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ३ ॥

दोहा-चेतनमात्र आत्म मई, चंचल चित थिर होय ।
तहां करै रति आपनी, जीवन्मुक्त है सोय ॥

श्लो०-अयंजीवन्मुक्तोहृदिगतविकारंनभजतेयथासुप्तोजीवःनहि किमपिजानातिमनसा ॥ भवेज्जाग्रन्साक्षीविमुखसुखदुःखात्परप रोह्ययंधन्योमान्योगतमरणजन्माभुवितले ॥

भा०-यह जीवन्मुक्त हृदय में विकार नहीं लाता है जैसे सोता हुआ जीव मनसे कुछ नहीं जानता है सुख दुःख से अलग जागतेही में साक्षी होकर रहता है जन्म मरण से धन्य २ और माननीय है ॥

श्लो०-परमात्मनिविश्रांतंयस्यव्यावृत्यनोमनः ॥
रमतेऽस्मिन्पुनर्दृश्येसजीवन्मुक्तउच्यते ॥४॥

दो०-परमात्महि विश्राम लहि, नहिं लौटत मन जासु ।
कार करै सब जगत के, जीवन मुक्ती तासु ॥

श्लो०-सर्वएवपरिक्षीणासंदेहायस्यवस्तुतः ॥
सर्वार्थेषुविवेकेनसविश्रांतःपरेपदे ॥५॥

दो०-क्षीण भये संदेह सब, जिहके सहज स्वभाव ।
सर्व अर्थ में ज्ञान से, पर पद प्राप्तो पाव ॥

श्लो०-अविश्रांतेनिरालंबेदीर्घेसंसारवर्त्मनि ॥
चिराद्दात्मनिविश्रांतिःप्राप्तायेनजयत्यसौ ॥६॥

दोहा-निरालंब विश्राम विन, बड़ा सफर संसार ।

चिद से आत्म अराम लहि, जय पावै गइ हार ॥
श्लो०—धाविलायेचिरंकालंप्राप्तविश्रांतयःस्थिताः ॥
तेसुप्ताइवलक्ष्यंतेव्यवहारपराअपि ॥ ७ ॥
दोहा—बहुत काल लौं धायके, थिर मे लहि विश्राम ।
सोवत सरिस लखात हैं, करि व्यवहारहु काम ॥
कुंड०—पड़े महात्मा राह में, जीवन्मुक्त सुजान ।
छाती पर आगी धरी, दुष्ट न कीनो ध्यान ॥
दुष्ट न कीनो ध्यान, सुजन भट्ट आगि उतारी ।
भोजन दै मिष्ठान्न, गयो तिनपै बलिहारी ॥
माधवराम सुमौन वह, पूंछत सब सुख दुख खड़े ।
सबै भोग प्रारब्ध बस, हम नहिं जानत पद पड़े ॥
सो०—जीवन मुक्त सुजान, सदा रहत लवलीन हरि ।
रक्षक है भगवान, जिमि बालक के मातु पितु ॥
भजन—जीव जब जीवन मुक्ती पावै, नीक विकार न लावै ।
तन प्रारब्ध भोग भोगत सब, साक्षी यह दरसावै ॥
सरल समाधि लगी रह हर छन, नाहीं ध्यान लगावै ।
भलो बुरा सुख दुःख द्वैत सब, हिये भान नहि आवै ॥
मदिरा मत्त वसन सुधिनाहीं, यह गति माहिं समावै ।
माधवराम आत्म मिलि ब्रह्महिं, एक रूप सुख छावै ॥

इति श्री विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे जीवन मुक्त लक्षण
नाम पंचदशोऽध्यायः ।

श्री वेदांत विज्ञान शिक्षा सर्वस्वे

स्वराजसिद्धिः षोडसोऽध्यायः

श्लो०—गुरुंमणम्यशिष्योऽसाविदंवाक्यमुवाचह ॥ दयालोमांस्व
राज्यस्य ह्यासनंप्रविधीयताम् ॥१॥
प्रभोदीनवन्धोदयालोह्यनाथेदयाधार्यतांनाथदीनेस्वदासे ॥
स्वराज्यास्पदंदेहिराज्याधिकंचेत्तदासत्यसौख्यंह्यदात्सद्गुरुर्वै ॥२॥
मनःकारणंपुत्रशुद्धेस्वराज्येमनःसंस्थितेराज्यसौख्यस्यप्राप्तिः ॥
स्वराज्यस्यप्राप्तिर्मनः संविनाशेसुयत्नेकृतेवैस्वराज्यप्रलाभः॥३॥

दो०—गुरुपद शीश नवाइकै, चेला बोलत बैन ।
देहु दयाल स्वराज मोंहिं, सत्सुखसे हो चैन ॥

छ०—हे दीनबंधु मैं अनाथहूं, मुझ दास पै दाया कर दीजै ।
देदेहु राज से बढ़ स्वराज, मोंहिं दीन जान अपना लीजै ॥
बहु विनती सुनि कह गुरूदेव, ले स्वराज तुझको देते हैं ।
मनही कारण है दोनों में, मनसे दोनों सुख लेते हैं ॥
हे बेटा होना सावधान, सुन तुझको भेद सुनाता हूं ।
जिस रास्ते से पावै स्वराज, वह सारा भेद लखाता हूं ॥
यह मुसलमान अङ्गरेज और, नृप जिमीदार सब बाधक हैं ।
इक हिन्दू पूरे शरभंगी ही बनते इसके साधक हैं ॥

दो०—शरभंगी जब तक नहीं, पावै नहीं सुराज ।
हो शरभंगी शीघ्र अब, तो बन जावै काज ॥

छ०-चेला कहता गुरु बतलादो, कैसे सब मेरे बाधक हैं ।
कैसे शरभंगी हो जाऊं, क्यों शरभंगीही साधक हैं ॥

जो शरभंगी होके स्वराज, तो माफ करो राजाही रहूं।
जिसको कहदो तू शरभंगी, वह दुख पावे मैं नहीं चहूं ॥
यह भेद न मेरे लख आवे, क्या कहके आप सुझाते हैं।
हमतो गुरुदेव शरण तुम्हरी, कुछ मर्म न ढूंढे पाते हैं ॥
गुरु कहते सुन मेरे प्यारे, सब भेद तुझे समझावेंगे ।
घबरावै मत धीरे २ सब तेरे काम बनावेंगे ॥

दो०–गूढ वार्ता संतकी, समझै विरला कोय ।
जो कोई समझे हिये, आवा गमन न होय ॥

छ०–है स्वराज सच्चो आत्म राज, जब परमात्मामय होजावे ।
पर इसमें बाधा अनेक हैं, जो सब से बचे सोई पावे ॥
तम गुन है पूरा मुसलमान, जो जीवहि मूसलमान करे।
जड़ता कठोर पन निर्दयता, ये मूसलमान प्रमान करे ॥
मूसल अज्ञान क्रोध लोभहु, नरको झट मूसलमान किया ।
रक्षक होते थे गौवों के, अब गोभक्षक परमान लिया ॥
ब्राह्मण लेते गोदान द्रव्य, इक जाल को गऊ दिखाते हैं ।
देखो प्रयाग आदिक में जा, ले मोल गऊ फिरवाते हैं ॥

दो०–गो इन्द्री का नाम है, गो गौवों का नाम ।
रक्षा शिक्षा किये से, साधें सारे काम ॥
पंडित भोगी दानले, भरते अपना पेट ।
दान गऊ का स्वप्नभा, गहरा होवे टेट ॥

छ०–पंडित ब्राह्मण गुनमानों के, घर देते दूध हैं मूसलमान ।
हा कैसे ब्राह्मण धर्म रहे, ब्राह्मणों करो कुछ इस पै ध्यान ॥
उस दूध से देव पितर तारो, तुमभी ब्राह्मण हो कहने को ।

यजमानों से पुजवाते गऊ, धन जोरो बहु नित गहने को ॥
गर कमर कसो गो रक्षा में, बलवान देह सुत धर्महु हो ।
दिखरावा लीक पीटते हो, कुछ सोचो तो सच कर्महु हो ॥
वह अपने बरतन में भर कर, कुछ करतब करके देते हैं ।
हो प्रसन्न चारो वर्ण पात्र अपने में भट से लेते हैं ॥

दो०—समर्थ पालें आप गो, सारी सोख भुलाय ।
नातेदारों में करें, रक्षा कमबल धाय ॥

छन्द—साधु ब्राह्मण नहिं चेत करें, कैसे गोरक्षा होसक्ती ।
अपनाही पेट भर मस्त रहें, दिखलाने की पूजा भक्ती ॥
क्षत्री पुरान ठाकुर खत्री, अन्न धन बल वाले जमीदार ।
सबही स्वराज जड़ खोद रहे, मरते स्वरान हित बारंबार ॥
जड़ स्वराज की गो रक्षा है, उस पर कुछ ध्यान नहीं देते ।
जंगल बन तोड़ २ सारे, निज आमद रोज़ बढ़ा लेते ॥
हरिलेत चरागा गौवों की, तब कैसे गो जी सकती हैं ।
जीविका गये पर सब मरते, क्षत्रियों की आशा तकती हैं ॥

दो०—इसका बहुत हवाल है, समझो सब सरदार ।
जो न ख्याल करिहो अभी, कुछ दिनमें सब ख्वार ॥

छ०-जैसे कुत्ते घोड़े पालो, कलियुगी भूतनी के सेवक ।
कुछ इधर निगाह करो सच्ची, तो स्वराज का हो पूरा हक ॥
वैश्यों का हाल क्या कहना है, हलकरते स्वराज जड़काभाग ।
धर्मात्मा भक्त बने चोखे, कहते हमतो हरदम बेलाग ॥
गो सेवा में नहिं दें छदाम, गांवों के वासी वैश्य कभी ।
अब नगर निवासी वैश्यों की, कहते में हो नहिं हिम्मत भी ॥

गोशाला हित पैसा निकाल, बनवाते तुरत शिवाला है।
करते हैं बाप दादों का नाम, लखते नहिं भर्म दिवाला है॥
दोहा—घरमें पालत हैं गऊ, गोशाला धन लाय।
दूध खांय गोभक्त बनि, नरक खबर नहिं आय॥
छ०-गो भक्षक में पैसा देवें, उनहीं की हाजिरी देते हैं।
कहते स्वराज हम पाजावें, पर सधी राह न लेते हैं॥
तीनों द्विज क्षत्री वैश्य निबल भे, आशा औरकी नित्य लखें।
अब कौन हमारा रक्षक हो, नित करें कुमेटी यही भखें॥
छोटे भाई तो छोटे बन, बचगये न बोझा उन पर है।
तौभी कुछ करके दिखलावें, उलटा सुलटा नहिं मन डर है॥
कुछ ही दिनमें सब हिंदू लोग, आपहि निर्बल हो जावेंगे।
लेना स्वराज तो दूर रहा, घर चूल्हा तुरंत गवांवेंगे॥
दो०—दूध के बदले जल पियें, घी में चर्बी तेल।
कबार आटा दाल में, सब समझे हैं खेल॥
छ०—खुशी रिस्ता गहरा रखते, मूसलमानों से हिन्दू सब।
मूसलपन, तमोगुण भरा जहां, तहां तमोगुनहिं कीहो करतब॥
चमड़े वालों को रुपया दे, ज्याजू गोवध करवाते हैं
वह रीति नहीं कहने की है, जो अपने मन में लाते हैं॥
जरिया स्वराज का पहला यह, तुम सिखलो तमोगुण दूर करो॥
शिक्षा आगे की कहता हूं, नर नारि सबै तुम दिलमें धरो॥
अंगरेज रजोगुण पूरा है, इसमें स्वराज का जिकर कहा।
तुम कहो और वह और करें, कैसे हो तुमरे दिलका चहा॥
तन शोल विदेशी वस्त्रों से, जिनको हम नहीं गिना सकते।

गहने औ घड़ी सब अंगरेजी, साबुन तक इटली का रखते ॥
मोती धोती सारी भारी, बरतन शीशा अंग्रेजी है।
बोली टोली बेल कम मिस्टर, अंग्रेजी रंगा मेजी है ॥
दोहा—देशी भी पहिरैं कोई, करि अंग्रेजी ठाट।
स्वराज पर भूले फिरैं, लखै न अपना घाट ॥
छ०—मोटर सूटर ड्रेसन फेशन, अंग्रेजी चालैं भांती हैं।
बन मेम बहूजो लाला सर (साहेब) मिस्टर लेडी होजाती हैं ॥
जूते श्लीपट स्वराज पर हैं, कर शौक न देखैं तन अपना।
मिट्टी में मिलते शौख से हैं, पर स्वराज का देखैं सुपना ॥
चूड़ी भी तो परदेशी हैं, परदेशीनो फ़ुक भार गई।
मेढ़ा बनगई लगाय सींग, ले हंसीनी सर्वस डार दई ॥
सोडा वाटर हिंद्र बिसकुट, हिन्दू होटल है तैयारी।
सुराज पुकारैं गली २, लेडी मेमों से कर यारी ॥
क्या हाल कहे अंग्रेजी का, धन धर्म सबी फांके जावै।
पर खूबसूरती यह उसमें, लखकर लख में भी नहिं आवै ॥
दोहा—छूंछे चर्खे चल रहे, कतै न अंगुल सूत।
आश किये कपड़ा बने, पूनी चर गया भूत ॥
छ०—जब तक सब शौक ये अंग्रेजी, तन माहिं रजोगुण छाया है
दब रहते मूसलमान तमो, रोजा भी सत घबराया है ॥
जिनको नहिं रहे जरूरत भी, वे भी जूते से शौक करैं।
गोदी के बच्चे, साधु, नारि, चट फेंक पुराने नये धरैं ॥
बेटा 'अंग्रेजीपन' तजदे, तन शौक रजोगुन दुखदाई।
जबतक दिलसे नहिं देशी हो, यह स्वराज सपने नहिं पाई ॥

राजा रईश सब जमीदार, है पूर सतोगुण भेद सहित।
इसको भी भेद समझो प्यारे, तब तुम्हार होवै सच्चा हित॥
इनका रिस्ता अंग्रेजी से, कुछ मूसलमानों से यारी।
है कामदार दोनों सबके, मेमें रंडी लगती प्यारी॥
दोहा—चमड़े ही पर फिदा हैं, छोड़े असली रूप।
मनसे उपमा समझलो, चतुर पड़े तम कूप॥
छ०—चमड़े ने इतना हक पाया, संदूक आदि चमड़े की बनी।
चर्मड़ाही शिर पर चढ़ बैठा, चमड़ा ही हाथ में बेग मनी॥
चमड़े ही ने जा कमर कसी, चमड़ा ही घरमें छाया है।
चमड़े ही की नित बात करें, चमड़ा ही मनमें भाया है॥
राजी कर डांड बतावै नित, रजरनी डंट अंग्रेजापन।
चिढते स्वराज के नाम से हैं, राजा रईश सतगुन निर्धन॥
खोये बैठे स्वराज की जड़, गोपाल जिसे रक्षा कीनी।
रघु दिलीप चन्द्र सूर्य वंशी, दे प्रान गऊ रक्षा लीनी॥
दोहा—महाराज पन चहत हैं, लक्षण एकहु नाहि।
पानी महाराजहु भरैं, सुधि नाहीं हिय माहिं॥
छ०-सब दिखाव के सतकर्म, सतोगुण ये रईश राजा छोड़ो।
शरभंगी बनजा हे बच्चा, तीनों से अपना मुंह मोड़ो॥
शर कहैं पांच को पांच तत्त्व, अरु पांच पांच इन्द्री गाई।
हैं पांच विषय फिर पांच कोश, सब तीन पांच हैं समुदाई॥
करभंग तीन औ पांच तभी, शरभंगी नाम तेरा पूरा।
गुन तीन अवस्था तीन तीन, तन तोड़ चट्ट बनजा शूरा॥
शर उर्दू में कहते शिरको, इसको भी भंग कर युक्ती से।

वनजा शरभंगी सबसे अलग, सबसे छूटा मिल युक्ती से ॥

दोहा—शरभंगी को मेल यह, यह है उलटी रीति ।
सबसे रिस्ता भंग कर, भंगी बन हर प्रीति ॥

छ०—शिर तोड़ योग की युक्ती से, दशवां दरवाजा खुल जावै।
उस रस्ते से बाहर निकलै, फिर इस दुनिया में नहिं आवे ॥
यह करतो पाव स्वराज अब, सब भेद भाव हम बतलाये ।
तीनों गुन तीनो तज देतन, तब स्वराज पद तुरीय आये ॥
ये मनोराज का राज भोग, तीनो गुनही के अन्दर है ।
त्यागे बिन स्वराज स्वाद कहां, अदरख की चाट ज्यों बन्दर है ॥
यह मनोराज सब राज तेरा, गो गोचर जहं तक मन जावे ।
मनही ने रचा है स्वांग पुत्र, सत्संगत कर तो लख पावे ॥
मन को मारै तो स्वराज ले, हो अमर न फिर मृत्यू खावे ।
यह राज छुटैगी मरने पर, कर चेत तो सतसुख नगचावे ॥

शिष्य०-मन का कहो हवाल सब, मारन केर उपाव ।
अब श्रीगुरुदाया करो, फेरि मृत्यु नहिं आव ॥

गु०—इस विधि सु बेटा समझ, तो यह मन मरजाय ।
मुक्त होय जगजाल तजि, आवागमन नशाय ॥

श्लो०—नायंजनोमेसुखदुःखहेतुर्नदेवतात्माग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परंकारणमामनन्तिसंसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनोगुणान् वैसृजतेबलीयस्ततश्चकर्माणिविलक्षणानि । शुक्लानिकृष्णान्यथलोहितानितेभ्यःसवर्णाःसृतयोभवन्ति ॥ ४४ ॥

कुंड०—जन नाहीं सुख देत हैं, दुखहू नाहीं देत ।
नहिं आत्मा सुर कर्म ग्रह, काल दुःख के हेत ॥

काल दुःख के हेत, वड़ा कारन मन अपना।
ऐस जवर मन अपन, करत जग चक्र कल्पना।।
माधवराम विचार लो, सव करतव करै एक मन।
कुछ नाहीं सव कुछ वने, असमन वेदव हे सुजन ॥

स०-सत्वरजो तम तीन गुनो, रचि देत यहे मन देर न लावै।
लोहित शुक्ल कहावत श्याम, अनेक सुकर्म कुकर्म करावै ॥
देव मनुष्य कुयोनि में डारि, विपत्तिहु संपति भोग भोगावै।
माधवराम कृपा जव होय, तवै वश ह्वै हरिके गुन गावै ॥

श्लो०-अनीहआत्मामनसासमीहताहिरएमयोमत्सखउदविचष्टे॥
मनःस्वलिंगंपरिगृह्यकामानजुपन्निवद्धोगुणसङ्गतोऽसौ ॥ ४५॥
दानंस्वधर्मोनियमोयमश्चश्रुतंचकर्माणिचसद्व्रतानि ॥ सर्वेमनो
निग्रहलक्षणान्ताःपरोहियोगोमनसःसमाधिः ॥

कुंड०-इच्छा रहित आतमा, मन है इच्छावान।
शुद्ध रूप जग से अलग, तासु मित्र भगवान॥
तासु मित्र भगवान, लिंग निज मनुआ धारै।
भोग करै सुख काम, जीव के ऊपर डारै ॥
माधवराम मुक्त है, सुनै जीव नहिं शिक्षा।
मन संगति से वंध्यो है, मानै अपनी इच्छा ॥

क०-दान निज धर्म सव यम औ नियम सारे, वेद पाठ कर्म व्रत वहु विधि ठाने हैं। मन वश होय तो है सांची सव कारवार योगी योग साधि के समाधि में समाने हैं ॥ साधन सकल मन वश हीके हेत अहैं लेत नाहिं सत्य सीख मूरख दिवानेहैं। माधवराम कठिन उपाय पाय धायथकि, राम कृष्ण गुन गाय

रहत ठिकाने हैं ॥

श्लो०–समाहितंयस्यमनःप्रशांतंदानादिभिःकिंवदतस्यकृत्यम् ॥ असंयतंयस्यमनोविनश्यद्दानादिभिश्चेदपरंकिमेभिः ॥ ४७ ॥ मनोवशेऽन्येह्यभवंस्मदेवामनश्चनान्यस्यवशंसमेति । भीष्मोहि देवःसहसःसहीयान्युंज्याद्वशेतंसहिदेवदेवः ॥ ४८ ॥

स०–मन जासु प्रशांत रहै हरिमें, व्रत दान विधान करै न करै।
मन जासु ललात फिरै जगमें, जप दान सुध्यान धरै न धरै ॥
करै सत्य सुकर्म सदा हियसों, यमराज सो फेरि डरै न डरै।
यह माधवराम पुकारि कहैं, भव बंधन में न परै न परै ॥

स०–मन देव को पूजि कियो वशमें, सुर पूजन फेरि करै न करै।
मन के वश हैं सव नाहिं दवै, मन जोर वड़ा न टरै न टरै ॥
वहुदेव भयंकर ये मन है, यह सो डरि फेरि डरै न डरै।
मन माधवराम करै वश में, भववंधन में न परै न परै ॥

सो०–मनहि भयंकर देव, सव देवन कहं वश किये।
सो देवन को देव, जो माधव मन वश करै ॥

श्लो०–तंदुर्जयंशत्रुमसह्यवेगमरुंतुदंतन्नविजित्यकेचित्॥कुर्वन्त्य सदविग्रहमत्रमर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥ ४९॥ देहंमनो मात्रमिमंगृहीत्वाममाहमित्यन्धधियोमनुष्याः । एषोऽहमन्योहमि तिभ्रमेणदुरन्तपारेतमसिभ्रमन्ति ॥ ५० ॥

कुं०–मन दुर्जय रिपु असह अति, हिय कर छेदनहार।
मूरख मन जीतैं नहीं, करै वृथा तकरार ॥
करै वृथा तकरार, मित्र अरु शत्रु वनावै।
समहु भाव करि मूढ़, उदासी मन महं लावै ॥

माधवराम जीति मन, चट हो जावे साधु जन।
जबलगि है मन शत्रु, तबै लगि है जग दुश्मन॥
क०—देह यह मनोमात्र ताहि गहि जीव जड़, हम औ हमार नित अन्धमति ठाने हैं। तुमरो हमारो यह और दूसरे को अहै, भ्रम से तुरन्त अन्धकार में समाने हैं॥ तोर .मोर शोर थोर जगत पुकारैं मूढ़, निज मन कार सो सफेद कर माने हैं। माधवराम प्यारा औ दुलारा नंदरायजू को, मनको सम्हारैं ताहि मूरख भुलाने हैं॥
दोहा—मन मारन वश करन को, सुनलो यही उपाय।
सत्संगत कर साफ दिल, रामकृश्न गुनगाय॥
श्लो०—सत्संगवासनात्यागोऽध्यात्मविद्याविचारणः। प्राणस्पंदनिरोधश्चेत्युपायामनसोजये॥ ७॥ चलेवायौचलेचितंनिश्चले निश्चलंभवेत्॥ योगीस्थानत्वमाप्नोतिततोवायुंनिरोधयेत्॥
कुं०—सत्संगत इच्छा तजव, औ अध्यात्म विचार।
प्राण वायु रोकव सही, मन रुक चार प्रकार॥
मन रुक चार प्रकार, जबर सत्संगत जानौ।
लो प्रत्यक्षहि स्वाद, कही एकहु नहिं मानौ॥
माधवराम संग सो, सुधर, जाय सब रङ्गत।
देति वासना त्याग, ज्ञान ध्यानहु सत्संगत॥
स०-रङ्ग लगै सत्संगत को, तो लबारपना तुरतैं छुटि जावै।
जो मन कर्म से लोह समान, छुवैं तुरतैं तेहि सोन बनावै॥
कातर कायर जीव यहै, बनि वीर कुशत्रुन सो जय पावैं।
माधवराम उपाय सबै, हमरे मन तो सत्संगति भावैं॥

दोहा—वायु चले चित चलत है, रोके निश्चल सोय।
योगी को मुक्ती मिलै, जो वायू वश होय॥
शिष्य०—जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति कर, गुरुजी कहो हवाल।
कहो स्वराज तुरीय सत, छूटि जाय जग जाल॥
छ०—स्थूल देह रचि पंच भूत, दुख सुखका घर सबकार असार।
इससे तुझको क्या मतलब है, प्रारब्ध भोगि होजावे छार॥
फिर सत्रातत्व की सूक्ष्म देह, दश इन्द्री पांच प्राण आये।
मन बुधि मिलकर सत्रा सब हैं, तब सूक्ष्म देह भितरी पाये॥
कारण शरीर तिसके भीतर, जो मूल अविद्या कहलावै।
सबके भीतर चौथा तुरीय, सोइ स्वराज रूप तेरा पावै॥
तू साक्षी तोनो तनसे रहित, तेरे नहिं तनको बंधन है।
अभिमान से माने तन तूने, आपही फँसा भव फंदन है॥
दोहा—निर्गुण नीराकार है; सूक्ष्म देह मनोगज।
जो इसही में फंस रहे, तो बिगड़े सब काज॥
छ०—है तीन अवस्था से बाहर, जो बाल युवा वृद्धापन है।
सबसे न्यारा तेरा सरूप, समझे से नहिं सताप लहे।
औरहू अवस्था तीन सुनो, जाग्रत औ स्वप्न सुषुप्नोपन।
इनही में चक्कर खाय जीव, तजि रूप अपनपो सत्चार्धन॥
जाग्रत तो विश्व भाग कहिये, स्थूल वैखरो वानी है।
ब्रह्माजी देव तहां के हैं, फिर रजोगुनहु गति ठानी है॥
सूक्षम शरीर में स्वप्न भोग, है मनोगज जो भोग वरे।
मध्यमावाच सतगुण विश्नू, हैं देव तहां के ध्यान धरे॥
दोहा—सुषुप्ति प्राज्ञ अनंदमय, नाहिं भोग पहिचानि।

रुद्र देव अज्ञान तम, पश्यन्ती तहं बानि ॥
छ०–है तीन अवस्था से न्यारा, अद्वैत अखंड तुरीय तुही ।
सबमें सबसे न्यारा हैं तू, सबमें तू है तुझमें न सही ॥
इनही में पंच कोश लखले, तो तीन पांच झगड़ा छूटे ।
शरभंगी वन सब भंग करें, तब स्वराज पद का सुख लूटे ॥
स्थूल देह षट विकारमय, सो कोश अन्नमय कहलावे ।
रजवीर्य पिता माता से बना, दुख रोग का है घर जग गावे ॥
है सूक्ष्म देह में तीन कोश, तज तीन, तीन पन छुट जावे ।
ले समझ भूलना नहिं प्यारे, जो भूला भव में भटकावे ॥
दोहा–सत्रातत्व का सूक्ष तन, स्थूल में रहे पचीस ।
समझ साफ चित धारले, पारहे बिस्वाबीस ॥
छ०–इक प्राणमयी फिर मनोमयी, विज्ञानमयी तिसरा जानो ।
प्रानहु अपान व्यानहु उदान, औ समान प्रानमयी मानो ॥
कर्मेन्द्री पांच मिलें मन जब, तब मनोमयी हो कोश असल ।
ज्ञानेन्द्री पांच मिले बुद्धी, विज्ञानमयी कर कोश दखल ॥
कारण शरीर में शोभा लहि, आनंदमयी कोशहु आवे ।
कारणौ देह अज्ञानमयी, जो मूल अविद्या कहलावे ॥
वोही अनंदमय कोश अहे, तू इन सबसे न्यारा प्यारे ।
लख निज पद स्वराज सुख भोगै, काहे को फिरता मनमारे ॥
शि०उ०–आतम रूप लखाय दो, तो तम मेरा जाय ।
कहो गुरू पहँचान सब, आवागमन नशाय ॥
श्रुतिः–नांतःप्रज्ञंनवहिःप्रज्ञंनोभयतःप्रज्ञंनप्रज्ञानघनंनप्रज्ञंनाप्रज्ञम् ॥ अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेका

त्मप्रत्ययसारंप्रपंचोपशमंशान्तशिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्तेसआत्मा विज्ञेयः ॥

०-वह स्वराज पद नहिं अंतः प्रज्ञ, नहिं बाहर नाना जाता है।
बाहर भीतर भी नहीं प्रज्ञ, प्रज्ञान घनहु कहलाता है॥
अप्रज्ञ प्रज्ञ नहिं कह सकते, व्यवहार हीन दर्शन से रहित।
नहिं ग्रहण योग विन लक्षण वह, नहिं चिंतन में रहता सतचित्॥
नहिं देश कहीं एकात्मा है, जग भिन्न सारमय प्रपंच नहिं।
शिव शांत द्वैत विन तुरीय है, सो स्वराज पद आत्मा श्रुतिकह॥
उपनिषत् बहुत विधि कहैं मिलै, वैराग और अभ्यास किये।
सत शुद्ध सतो गुण अन्न खाय, फुर जावै आवै पास हिये॥

शिष्यउ० दो०-प्रथम कहो वैराग गुरु, पीछे कहि अभ्यास।
अवतो पार लगाइये, छूट जाय भवफांस॥

श्लो०-यदानिर्वेदमायातिमनसानिर्मलेनवै ॥ पंचभूतात्मकोदेहो ममकिंचात्रदुःखदम् ॥१॥ पतत्वद्ययथाकामंमुक्तोऽहंनिर्गुणोऽव्ययः ॥ नाशात्मकानितत्त्वानितत्रकापरिदेवना ॥२॥

छं०-वैराग बहुत विधि का प्यारे, सच्चा वैराग सुनाता हूं।
इसही को साधन कर दिल में, मैं स्वराज सुख नित पाता हूं॥
पहिले तो निर्मल चित होवै, जिसमें स्वराज सुख सत सूझै।
दिलमें होवे भितरी विराग, सच त्याग तभी आत्मा बूझै॥
मिट्टी पानी सब पंच तत्त्व, का तन मुझको क्या दुख देगा।
प्रारब्ध भोग कर नाश होय, सच आत्मा मुझसे क्या लेगा॥
पहले ही बना प्रारब्ध भोग, अब कम बढ़ नहिं हो सकता है।
भजराम काम कर ऊपर से, ले मुक्ती तू क्यों भकता है॥

दो०–जो अब चूका जीव तू, चौरासी में जाय।
घर कुटुम्ब धन छूटिहैं, जन्म २ दुख पाय॥

छं०-अब आंख बंद कर सम्हार ले, जो खुली आंख तो हार भई।
बिगड़ै सब कुछ या बन जावै, नहिं ख्याल बंद दृग रीति नई॥
हो नाश देह अबहीं या जिये, सौ वर्ष मेरा बिगड़ै न बनै।
मैं मुक्त रूप निर्गुण अव्यय, नहिं नाश मेरा उपनिषत् भनै॥
होते हैं नाश ये पांच तत्व, जिनसे ये तन क्या रोना है।
वश बैठ अलग मन मार छार कर, दुनिया दिलको धोना है॥
तृण समान सिद्धी सब जानै, तीनहु गुण त्यागी बन लावे।
लक्ष्मी विलास शुनि वमन तजै, सो बड़ भागी जन कह लावे॥

चौ०-कहियतात सोइ परम विरागी, तृणसम सिद्धितीन गुनत्यागी।
राम विलास रोम अनुरागी, तजत वमन इव जन बड़ भागी॥

दो०–कुल कुटुम्ब वैराग हो, लक्ष्मी नाहिं सोहाय।
ढूंढ़ै आत्मा राम कहं, सो वैरागी आय॥
जोड़ी[१] तजि जोड़ी[२] तजै, पुनि जोड़ी[३] का त्याग।
जोड़ी[४] में मन नहिं लगे, तो सांचा वैराग॥

अभ्यासोपरि श्लोकाः–योग वशिष्टे
प्राधान्यंमनसःध्यानेतदंगेमौनमासनम्। देहवाच्यपिविज्ञेयंपौरुपात्फलमाप्यते॥

स०–दृढ़ आसन मौन गहे मनको, नित ध्यान के माहिं प्रधान करै।
समुहे इक चित्त सदा रहिकै, मुखिया करि जीभ विनय उचरै॥
मन बानी सदा तनमें लहिकै, शुभ पंथ में देह सदा विहरै।

जूता १ स्त्री २ घोड़े की जोड़ी बग्घी ३ चेला शिष्य यार चिट्ठी ४

सब मेलिके माधवराम बने, निजरूप स्वराजहिं में लहरे ॥
धुन इतना तो करना स्वामी० ॥

भजन—तन मन वचन यतन से, आतम मिलान होवे ।
उपरी दिखाव करके, नहिं आत्म ध्यान होवे ॥ टेक०
जब ध्यान की नियत हो, आसन एकाँत यत हो ॥
वाणी मौन में रत हो, तहं मन प्रधान होवे ॥१॥
स्तुति का ठान ठानों, मन सावधान आनों ॥
सन्मुख शरीर लानों, मुखिया जवान होवे ॥२॥
जो तीर्थ गमन करना, मनको उसी में धरना ॥
बानी वहीं अनुसरना, यों देह तान होवे ॥३॥
दो २ कभी मिलावे, तीनों कभी भुलावे ॥
माधव स्वराज पावे, सत् चित मकान होवे ॥४॥
तन मन वचन यतन से, आत्मा मिलान होवे ॥

दो०-तिल भर नहिं मिहनत परे, जब होवै अभ्यास ।
पहले तो कुछ कठिनता, करके लेलो पास ॥

छ०—अभ्यास गेह अभ्यास देह, अभ्यास है नारि मनानेका।
अभ्यास है खाने पीने का, अभ्यास है पुत्र खिलाने का ॥
घर बाहर का अभ्यास किया, अभ्यास है महल बनाने का ।
अभ्यास है गहने कपड़े का, अभ्यास है धन ठग लाने का॥
अभ्यास कचहरी बजार का, अभ्यास है झूंठ बहाने का।
अभ्यास है झगड़ा करने का, अभ्यास है जाल बिछाने का॥
क्यों नहिं करते अभ्यास मित्र, सत्संग कृष्ण गुन गाने का।
सच्चे सुख का अभ्यास आत्म, सुख स्वराज पद के पानेका॥

दो०–है परहेज विराग दृढ, औषध है अभ्यास ।
विराग थोड़े में कहा, ले अभ्यास सुपास ॥

श्लो०–निवृत्तेसर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः ॥
अद्वैतःसर्वभावानांदेवस्तुर्योविभुःस्मृतः ॥ १० ॥
कार्यकारणवद्धौ ताविष्येतेविश्वतैजसौ ॥
प्राज्ञःकारणवद्धस्तुद्वौतौतुर्ये न सिध्यतः ॥ ११ ॥
नात्मानंपरांश्चैवन सत्यं नाऽपिचानृतम् ॥
प्राज्ञःकिंचनसंवेत्तितुर्यंतत्सर्वदृक्सदा ॥१ ॥
द्वैतस्याग्रहणंतुल्यमुभयोःप्राज्ञतुर्ययोः ॥
बीजनिद्रायुतःप्राज्ञः सोचतुर्ये न विद्यते ॥ १३ ॥
स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥
ननिद्रांनैवचस्वप्नंतुर्येपश्यंतिनिश्चिताः ॥ १४ ॥
अन्यथागृह्णतःस्वप्नो निद्रातत्वमजानतः ॥
विपर्यासेतयोःक्षीणे तुरीयंपदमश्नुते ॥ १५ ॥

दो०–विश्वहु तैजस प्राज्ञ तन, तीनहु का तजमान ।
द्वन्द दुःख छूटे तेरा, होय आत्म पहिचान ॥

छ०–ईशान तुरीय आत्मा प्रभु, सब दुख त्यागे से प्रभु कहा।
नहिं व्यय हो यासे अव्यय, सब भावों से अद्वैत महा ॥
है द्वैत भाव रसरी में सांप, अद्वैत में नहिं हो शास्त्र कहे ।
विभु तुरीय चौथा आत्मा तू, लखले स्वराज पद यही अहे ॥
कारज स्थूल विश्व समझो, तिससे कारण तैजस परमान ।
दोनों का कारण प्राज्ञ अहै, पहिले दोका नहिं तुर्य मिलान ॥
फल विश्व बीज तैजस जानों, बीजहु का तत्व प्राज्ञहु कारन ।

इमसे कुछ तुर्य मिलान अहे, स्थूल सूक्ष्म नहिं कर धारन ॥
दो०—नहीं आप परको लखैं, नहीं झूंठ नहिं सांच।
कारण प्राज्ञ तृतीय तन, तुरीय सत नहिं आंच ॥
छ०—नहिं रूप को समझै कारन तन, है बीज अविद्या का येही।
जैसे निद्रा में सब भूले, कहता हम सोये सुख से ही ॥
अज्ञानपने से कारन है, नहिं जाने आत्म स्वराज सरूप।
औरही समझता अपने को, रहता है पड़ा अज्ञान कूप ॥
वह आत्मा चौथा तुरीय है, सबको आपहु को जाने है।
ज्यों सूरज में नहिं अन्धकार, द्रष्टा की दृष्टि बखाने है ॥
जाग्रत औ स्वप्न सुषुप्ती का, साक्षी सब द्रष्टा कहलावे।
उससे नहिं दूजा है प्यारे, ले स्वराज आत्मा सुख छावे ॥
दोहा—औरहु समझावें तुझे, लख तज दे जग जाल।
मनोराज का नाश है, यहां न व्यापै काल ॥
श्लो०—द्वैतस्याग्रहणंतुल्यमुभयोःप्राज्ञतुर्ययोः ॥
बीजनिद्रायुतःप्राज्ञःसाचतुर्येनविद्यते ॥१३॥
छ०—कारण तृतीय तन प्राज्ञ तुर्य, है चौथ द्वैत इनमें है नहीं।
है प्राज्ञ में निद्रा ज्ञान न है, औ तुरीय में सद ज्ञान सही ॥
होता है तत्व का ज्ञान तहां, इससे नहिं कोई बंधन है।
औरही विलक्षण होय रूप, फँसता नहिं कोई फंदन है ॥
संसार नींद से जागा जो, कोई व्यवहार न भाता है।
प्रारब्ध विवश देही में रह, उठ बैठ नहाता खाता है ॥
नहिं समझै किसी को वह अपना, सब रूप बना सबमें आपी।
देहिक दैविक भौतिक जे ताप, इनसे नहिं होता संतापी ॥

दोहा—तीन लगे संसार है, चौथा तुरीय आप।
ले स्वराज पद शिष्य यह, छूटि जाय भवताप ॥
श्लो०—स्वप्नन्द्रियुतावाद्यौप्राज्ञस्थास्वप्ननिद्रया ॥
ननिद्रांनैवचस्वप्नंतुर्येपश्यतिनिश्चताः ॥ १४ ॥
छ०—उलटा समझै सो स्वप्न, सर्प रस्सी को जैसे माने है।
नहिं तत्व ज्ञान सुध बुध कुछ भी, सो सुपुप्त ज्ञानी जानै हैं ॥
जाग्रत औ स्वप्न दोउ कार्य बंधे, कारण तन प्राज्ञ से तुम जानो।
सपना देखन जागना नहीं, सो प्राज्ञ नींद गहरी मानो ॥
नहिं नींद औ स्वप्न तुरीय में है, ज्यों सूर्य में तम का नाम नहीं।
है स्वराज पद आत्मा तुरीय, कारण औ कार्य का काम नहीं ॥
औरही रूप दुनिया दिखती, वह कहने में नहिं आ सकती।
ज्यों गूंगा गुड़ को खाय स्वाद, कहने को नित जिव्हा झखती ॥
दोहा—स्वराज मिलना कठिन है, जो कदापि मिल जाय।
सतसुख लहै सम्राट हो, आवागमन नशाय ॥
छ०—कब होती है तुर्यावस्था, गुरु से चेला ने प्रश्न किया।
हो सावधान तो समझैगा, तुझे सुजन समझ के ज्ञान दिया ॥
जागें पैं जग को स्वप्न लखै, रस्सी में सांप भ्रम बनि जावै।
नहिं सार तत्व लखै सुषुप्ति में, तीनों में अद्भुत गति पावै ॥
पहिली दो में कुछ रद्द बदल, तीसरी तो बड़ी विलक्षण है।
जब निद्रा जोर करैं तनमें, तब मांगे देत नहीं छन है ॥
झगड़ा है उलझन तीनों में, नहिं तत्वज्ञान है सुखदाई।
ये क्षीण होंय हो उलट पलट, तब स्वराज तुरिया सुखदाई ॥
शिष्य उ०—नींदहु में आनंद है, नहीं दुःख का भान।